

सन्जातिन धर्म ज्ञान संचय



मर्यादा पुरुषोत्तम
श्रीराम चन्द्र जी

— मदनलाल मुख (मंगल)

अनुक्रमणिका

| विषय | पृष्ठ सं. |
|---|-----------|
| 1- लेखक परिचय | 3 |
| 2- एक निवेदन | 4 |
| 3- हृदयोत्तरार | 5 |
| 4- प्रस्तावना | 6 |
| 5- मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम | 7-42 |
| क- श्री राम का अतूल पराक्रम | 20 |
| ख- श्रीराम की कृतज्ञता | 23 |
| ग- श्रीराम का सदाचार | 24 |
| घ- श्रीराम का भ्रातुप्रेम | 27 |
| ड- श्रीराम का आत्मज्ञान | 30 |
| च- श्रीराम का प्रजा प्रेम | 30 |
| छ- एकांकी नाटक-केवट संवाद | 31 |
| ज- एकांकी नाटक-भरत मिलाप | 33 |
| 6- रामायण के विषय में कुछ मिथ्या धारणायें | |
| एवं उनका निराकरण | 42-47 |
| क- श्रीराम ईश्वर नहीं मर्यादा पुरुषोत्तम एवं महापुरुष थे। | 42 |
| ख- श्री हनुमान जी वानर नहीं मनुष्य थे। | 45 |
| 7- रामायण के अनमोल वचन | 47-50 |
| 8- योगेश्वर श्री कृष्ण | 51-70 |
| क- जन्म | 52 |
| ख- श्री कृष्ण एवं रुक्मणी का विवाह | 55 |
| ग- श्री कृष्ण एवं पाण्डवों का सम्बन्ध | 57 |
| घ- श्री कृष्ण का दौत्यकर्म | 61 |
| ड- गीता के अमर गायक श्री कृष्ण | 62 |
| च- महाभारत युद्ध में श्री कृष्ण की कूटनीति | 63 |
| छ- योगेश्वर श्री कृष्ण के मुखारविन्द से | |
| निःसृत गीता के चुने हुए मोती। | 65-70 |
| 9- वेदों में त्रैतवाद अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति | 71-73 |
| 10- वेदों के अनुसार ईश्वर का स्वरूप | 74-78 |
| 11- योग दर्शन में ईश्वर का स्वरूप | 78 |
| 12- एक ईश्वर के अनेक नाम | 79 |
| 13- सत्यार्थ प्रकाश में ईश्वर के सौ नाम | 82-85 |
| 14- देवताओं को स्वरूप | 85-87 |

| | | |
|-----|--|---|
| 15- | वेदों के अनुसार जीवात्मा का स्वरूप क-जीवात्मा और ईश्वर का सम्बन्ध ख-जीवात्मा और ईश्वर एक नहीं | 87-92 92-93 92-96 |
| 16- | वेदों के अनुसार प्रकृति का स्वरूप | 97-100 |
| 17- | सृष्टि उत्पत्ति के कारण | 100-104 |
| 18- | सूक्ष्म शरीर | 105-107 |
| 19- | मन क्या है? | 108-110 |
| 20- | जीवात्मा का परम लक्ष्य-सुख प्राप्ति | 111-115 |
| 21- | योग परिचय क-सांख्ययोग अथवा ज्ञानयोग ख-कर्मयोग ग-भक्तियोग घ-मन्त्रयोग ड-लययोग च-हठयोग छ-राजयोग अथवा अष्टांगयोग | 116-117 117 118 119 120 120 120 121 |
| 22- | अष्टांग योग का परिचय (1) यम (2) नियम (3) आसन (4) प्राणायाम (5) प्रत्याहार (6) धारणा (7) ध्यान (8) समाधि | 121-130 |
| 23- | यज्ञ | 131-133 |
| 24- | वेदकालीन दीक्षान्त भाषण | 133-135 |
| 25- | वैदिक धर्म के सिद्धान्त-एक दृष्टि में | 136-139 |
| 26- | वेद वाटिका के पुष्ट | 139-147 |
| 27- | देवभाषा संस्कृत के चुने हुए जीवनोपयोगी-मोती | 148-160 |
| 28- | लेखक द्वारा रचित कवितायें क-ईश्वर की पहचान व परिभाषा ख-ईश्वर का निवास ग-सरस्वती वन्दना घ-मातृभाषा के हृदयोदगार ड-महर्षि दयानन्द के प्रति-महिमा महान है च-अगर ऋषि दयानन्द नहीं आता छ-उपनयन संस्कार ज-मां की महिमा झ-शहीदों को श्रद्धांजलि भ-आर्य कौन ट-मानव बन ठ-मेरी जन्म धरा राजस्थान | 160-169 160 161 161 162 164 164 166 166 168 168 170 171 |
| 29- | ब्रह्म स्तोत्र | 171 |

लेखक परिचय

अनुभव रूपी ज्ञान के मोतियों से ओतप्रोत “मंगल ज्ञान संचय” नामक प्रस्तुत पुस्तिका, नाम के अनुरूप ही मंगलकारी ज्ञान का संग्रह है। इसमें साक्षात् ईश्वर के ज्ञान रूप वेदों का सार, उपनिषदों का रहस्य, शास्त्रों का तत्त्व, वाल्मीकि, तुलसी एवं मैथलीशरण गुप्त की रामभवित्त, रसखान और मीरा की कृष्ण भक्ति, नचिकेता की ज्ञान भक्ति और समस्त चिन्तन को अनुभव की कसौटी पर परखकर सार रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार का संग्रह वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, विद्यावृद्ध, अनुभववृद्ध, मनस्वी और स्वाध्यायशील, चिन्तक के चिन्तन का ही परिणाम हो सकता है।

शास्त्र अनेक हैं। आयु स्वल्प है। रोग, शोक आदि बाधाओं से बाधित जीवनपथ पर चलते हुए जनसामान्य के लिए यह सर्वथा दुष्कर कार्य है कि वह समस्त शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन, मनन और चिन्तन करके उनको अपने जीवन का अंग बनाकर जीवन यात्रा को सुखद बना ले।

अतः यह आवश्यक हो जाता है कि किसी अनुभवी, मनस्वी, स्वाध्यायशील और चिन्तक के साररूप में प्रस्तुत अनुभवजन्य, चिन्तन को आत्मसात् करके कल्याण पथ का अनुगमी बनकर जीवन को सफल बनाएं।

इस पुस्तिका के लेखक श्री मदनलाल गुप्त (मंगल), सच्चे ईश्वर भक्त, महर्षि दयानन्द के अनुयायी, सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत, जन कल्याण की भावना से ओत-प्रोत, सबकी उन्नति में अपनी उन्नति मानने वाले, मनसा, वाचा, कर्मणा सर्वथा पवित्र पुण्यात्मा व्यक्ति हैं। ईश्वर आपको शतायु करे और आप इसी प्रकार कल्याण कार्य करते रहें।

डॉ. बलवीर आचार्य

एम.ए. (वेद एवं संस्कृत), पीएच.डी., डी.लिट

प्रोफेसर संस्कृत विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

प्रस्तावना

मेरी अपनी किशोरावस्था के बाद तक, मेरे जीवन में कई धार्मिक एवं साहित्यिक उत्तर-चढ़ाव आये।

मेरे प्रारम्भिक जीवन में अधिकांशतः, मेरे मन पर साकार ईश्वरोपासना की ही छाप रही और मैं उसमें अधिकाधिक गहराई में उत्तरता गया। परन्तु मेरे मन में निराकार उपासना संबंधी साहित्य के अध्ययन एवं ज्ञान की कमी बनी रही।

सन् 1964 में आदरणीय श्री चन्द्रबिहारी जी सक्सेना (आर्य) के सम्पर्क में आने से मेरी इस कमी को पूरा होने का शुभ अवसर आ ही गया।

परिणामस्वरूप आज यह पुस्तक आपके हाथों में है। उसमें अधिकांशतः निराकार एवं सर्वव्यापी ईश्वर की उपासना को आधार माना गया है। इस आर्यवर्ती (भारत) में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम एवं योगेश्वर श्री कृष्ण के जीवन के कुछ दृष्टांतों को वर्णित कर उनकी प्रेरणाएँ चुनी गई हैं। इन प्रेरणाओं का आधार वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस और साकेत रामायण के साथ-साथ वेद, उपनिषद्, स्मृतियाँ और दर्शन शास्त्र हैं।

यह प्रयास किया गया है कि इस महान् ज्ञान सागर में से कुछ बूदें हमें मिल सकें, जिससे हमारा जीवन प्रकाशमय बने।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन की प्रेरणा मेरे सुपुत्र डॉ. रमेश गुप्त (एम.डी., एफ.ए.सी.पी.एफ.ए.सी.जी.) न्यूजर्सी अमेरिका से मिली और इन्हीं के सहयोग से इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ।

मेरे भावों को भाषा के सूत्र में पिरोकर प्रमाणों की आधारशिला पर प्रस्तुत करने का कार्य वेदों के ख्याति प्राप्त विद्वान् मेरे प्रिय प्रो. बलवीर आचार्य ने किया है।

पुस्तक में आई त्रुटियों के लिए क्षमा याचना एवं संशोधन हेतु सुझावों की प्रार्थना सहित।

स्थान - छबड़ा

विनीतः

मदनलाल गुप्त (मंगल) ५ V WCE

छबड़ा जिला बारां (राज.)

फोन नं० 07452 - 222832

मो० 9928185211

“हृदयोद्गार”

इनके जीवन को दो शब्दों में, मैंने लिखा कहानी को।
त्याग तपस्या और चिन्तन में, करदी गलित जवानी को।
जैसा नाम मिला है इनको, वैसा प्रभु ने हिया दिया है।
अमृत बाँटा है अपनों को, चाहे खुद ने गरल पिया है॥

बालकृष्ण त्रिवेदी

छबड़ा

यही सोचकर प्रेम भाव का, झरना फिर से फूटा।
निष्ठा फर्ज निभाने को ये, हृदय दौड़कर टूटा॥
सामाजिक समरसता जागे, लोगों के जीवन में।
मार्ग मिले और दिशा - बोध हो, दुनियां की उलझन में॥
इसीलिए अभिव्यक्त हुआ ये, गीत गजल छन्दों में।
संचित ज्ञान हृदय का बिखरा, कागज के पन्नों में॥
भक्त कवि हूँ गायक तेरा, मेरा गीत ये अर्पित।
हे अनन्त! इस कृति रूप में, मधु संगीत समर्पित॥
हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी का, संस्कृत ज्ञान बटाया।
यूँ अग्रसेन के वंशज ने तम अज्ञान मिटाया॥
आर्य धर्म का सत्य ज्ञान है, वेदों में जो गाया।
दयानन्द ने भारत भू पर, सबको खूब लुटाया॥
इसी ज्ञान का संचय मैं भी, देता जन जीवन को।
घर-घर वासी है परमेश्वर, लोकार्पित जन-जन को॥

रमेशचन्द्र शर्मा

छबड़ा

एक निवेदन

मुझे इस पुस्तक को प्रस्तुत करते हुए अपार आनन्द की अनुभूति हो रही है। यद्यपि इन विषयों पर अनेक विद्वानों के बहुत अच्छे - अच्छे ग्रंथ हैं, परन्तु इस पुस्तक में तर्कपूर्ण शैली में जीवन को सुखद बनाने वाले स्वयं अनुभूत शाश्वत् सत्यों को प्रस्तुत किया गया है।

मेरे पिताजी सदैव से ही धार्मिक विचारों के व्यक्ति रहे हैं। उनको धर्म का स्वरूप, सत्य एवं न्याय का आचरण करना ही स्वीकार है। धर्म के नाम पर किये जाने वाले बाह्याङ्म्बरों से वे बहुत दूर हैं। महर्षि पतञ्जलि द्वारा बताये गये योग के मार्ग का अनुसरण करते हुए वे तपोमय जीवन यापन कर रहे हैं। पिता का अर्थ है - पालन करने वाला, मार्ग दर्शन करने वाला। पिताजी ने पिता धर्म का पूर्ण रूप से पालन किया है। हमारे पसीने पर अपना रक्त बहाने के लिए सदैव तत्पर रहे हैं।

अपने प्रारम्भिक जीवन में 1962 के आस - पास तक आप धार्मिक व्यक्ति तो थे परन्तु विचार रामायण, गीता, पुराण आदि तक ही सीमित रहे। लगभग 42 - 43 वर्षों पहले आर्य विद्वानों के सम्पर्क में आने से आपकी रुचि वैदिक विचारधारा की तरफ बढ़ गई एवं अध्ययन के विषय उपनिषद्, वेद, दर्शन आदि हो गये। धीरे - धीरे आपने अपने विचारों को लिखना प्रारम्भ किया। मुझे लगा कि क्यों नहीं इस अमूल्य निधि को एक पुस्तक का रूप दिया जाए जिससे सबको इसका लाभ मिल सके।

आप देखेंगे कि इस पुस्तक में श्रीराम व श्रीकृष्ण के जीवन को कथा के रूप में न लेकर, शिक्षात्मक रूप में लिया गया है। हमें रामायण के अलग - अलग पात्रों से तथा श्री कृष्ण के जीवन से क्या शिक्षा मिलती है? इसे बड़े ही सुन्दर रूप से बताया है। “चित्र नहीं - चरित्र की पूजा करो” इस बात को यहाँ पूर्ण रूप से चरितार्थ किया है। इस पुस्तक में आपके काव्य लेखन प्रतिभा की झलक भी देखने को मिलती है।

प्रत्येक सन्तान को उनके माता - पिता का मार्गदर्शन मिलता है और उससे जीवन में सफलता मिलती है। पिताजी के वैदिक विचार होने से व आर्य समाज के सिद्धान्तों पर चलने से मेरे जीवन पर बहुत असर पड़ा है। जीवन पथ पर आगे बढ़ने का रास्ता आसान हो गया है। यहाँ तक कि पूरे परिवार को - बच्चों को भी इससे बहुत लाभ हुआ है।

मुझे आशा ही नहीं - पूर्ण विश्वास है कि इसे पढ़कर यदि आप इन बातों पर मनन करेंगे तो आपको आनन्द आयेगा व लाभ अवश्य होगा।

मैं उन्हें पुनः न तमस्तक होता हूँ तथा उनके अच्छे स्वास्थ्य की व शतायु होने की परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ। दूर रहते हुए भी इनके मार्गदर्शन व आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

धन्यवाद!

डॉ. रमेश गुप्त (मंगल)

(एम.डी.एफ.एसी.पी.एफ.एसी.जी.)

वर्तमान निवासी न्यूजर्सी अमेरिका

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम

भारतीय परम्परा में श्री राम को मर्यादाओं का पालक एवं साक्षात् धर्म माना जाता है—“रामो विग्रहवान् धर्मः” अर्थात् राम शरीर रूप में साक्षात् धर्म हैं। जिन मानवीय मूल्यों, मर्यादाओं, कर्तव्यों का निर्देश वेदों एवं वेदानुकूल धर्मशास्त्रों में मानव मात्र के लिए किया गया है, उन्हीं को धर्म कहा जाता है। श्री राम के जीवन पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने वेद प्रतिपादित धर्मरूपी मर्यादाओं का कभी उल्लंघन नहीं किया। वाल्मीकि के अनुसार, वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों के ज्ञाता एवं पालक थे।¹ इसी कारण उनको “मर्यादा पुरुषोत्तम” अर्थात् मर्यादाओं का पालन करने वाले पुरुषों में सर्वोत्तम कहा जाता है।

श्री राम का चरित्र इतना पावन और उच्च कौटि का है कि जिसको अपना कर अनेकानेक पतित आत्माओं का उद्घार हो गया। अनेक कवि उनके चरित्र को लिखकर अमर हो गये। वेद एवं वैदिक साहित्य के बाद लौकिक संस्कृत का आदि काव्य वाल्मीकि रामायण है, जिसमें वाल्मीकि श्री राम के चरित्र को गाकर अमर हो गये।² हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक चर्चित पुस्तक यदि कोई है तो वह है— गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस, जिसने सदियों से जनमानस को भारतीय परम्पराओं से बांधा हुआ है।

1. रक्षिता स्वस्य धर्मस्य। वेदवेदाङ् तत्त्वज्ञः।

(वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 1.14)

- रामायण की अन्तः साक्षी के अनुसार, महर्षि वाल्मीकि प्रथेता ऋषि के दसवें पुत्र थे। उनका आश्रम तमसा नदी के टट पर था। एक दिन वे प्रातः काल स्नान करने के लिए तमसा नदी पर गये, वहाँ उन्होंने हृदय विदारक एक घटना को देखा

महर्षि वाल्मीकि काव्य लिखने के लिए एक सर्वगुण सम्पन्न, धर्मात्मा, नीतिज्ञ, सदाचारी, मर्यादाओं के रक्षक, सर्वजनप्रिय किसी नायक की खोज में थे। उसी समय ईश्वर की कृपा से सब शास्त्रों के ज्ञाता, परमतपस्वी देवर्षि नारद उनके आश्रम में पद्धरे। महर्षि वाल्मीकि ने अपने हृदय के भाव प्रकट करते हुए नारद जी से कहा कि मैं एक ऐसे आदर्शरूप पुरुष का जीवनपरक काव्य लिखना चाहता हूँ। जो सच्चे अर्थों में धर्मरूपी मर्यादाओं का पालक हो, मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण हो, जनसामान्य का आदर्श एवं प्रेरणा स्रोत हो सके। नारद जी ने इसके उत्तर में श्री राम का परिचय विस्तार से दिया। वाल्मीकि और नारद के बीच हुआ यह संवाद ही रामायण रूपी आदि महाकाव्य के रूप में लिखा गया। रामायण में वाल्मीकि ने राम के आदर्श चरित्र के माध्यम से वेदों के समस्त आचार व्यवहार, मर्यादा, धर्म - अधर्म रूप मानव समाज के कर्तव्य - अकर्तव्यों का ही विवेचन प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि और नारद का संवाद इस प्रकार है:-

वाल्मीकि - हे नारद! इस समय इस संसार में गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, कृतज्ञ (उपकार मानने वाला), सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है?³ सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हितसाधक,

कि - एक शिकारी ने एक वृक्ष की शाखा पर बैठे क्रौंच पक्षी के जोड़ में से मादा क्रौंच को मार दिया। महर्षि वाल्मीकि का हृदय करुणा से भर गया और निम्नलिखित श्लोक उनके मुख से निकला :-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

अर्थात् हे निषाद! (शिकारी) तू बहुत काल तक दुःख में भटकता रहेगा, क्योंकि तूने कामासक्त क्रौंच पक्षियों में से एक को मार दिया है। इस प्रकार कवि के हृदय का शोक ही मानों श्लोक रूप में फूटकर निकला। यह श्लोक ही विश्व का सर्वप्रथम लौकिक काव्य माना जाता है तथा महर्षि वाल्मीकि को आदि कवि।

विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन (सुन्दर) पुरुष कौन है?⁴ मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतने वाला, कान्तिमान् और किसी की भी निन्दा नहीं करने वाला कौन है? तथा संग्राम में कुपित होने पर किससे देवता भी डरते हैं?⁵ इस प्रश्न को सुनकर देवर्षि नारद ने उत्तर दिया कि - हे महर्षि वाल्मीकि! इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए राम ही इस प्रकार के महापुरुष हैं, जिनमें ये सभी गुण विद्यमान हैं। वे ही मन को वश में रखने वाले, महाबलवान्, कान्तिमान्, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय⁶, बुद्धिमान्, नीति को जानने वाले, वक्ता, शोभायमान्, शत्रुविनाशक, पुष्ट कंधों वाले, बड़ी - बड़ी भुजाओं वाले, शंख के समान गर्दन वाले, पुष्ट ठोड़ी वाले,⁷ चौड़ी छाती वाले एवं बड़े धनुषवाले हैं। उनके गले के नीचे की हड्डी (हँसली) मांस से छिपी हुई है। वे शत्रुओं का दमन करने वाले हैं, उनकी भुजायें घुटने तक लम्बी हैं, सुन्दर शिर है, भव्य ललाट है और उनकी चाल मनोहर हैं।⁸ उनका शरीर और सभी अंग सुगठित हैं, शरीर न बहुत छोटा

- 3. को न्वस्मिन्! साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्ये दृढ़वतः॥
वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 1.2
- 4. चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥
वही 1.3
- 5. आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे॥
वही 1.4
- 6. इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥
वही 1.8
- 7. बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाङ्गत्रुनिर्बहर्णः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुगीवो महाहनुः॥
वही 1.9

है और न बहुत बड़ा, शरीर का रंग चिकना है, वे बड़े प्रतापी हैं, उनकी छाती पुष्ट है, नेत्र बड़े - बड़े हैं और वे सभी शारीरिक शुभ लक्षणों से युक्त हैं।⁹

वे धर्म के ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजा के हित - साधन में लगे रहने वाले हैं। वे यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय और मन को एकाग्र रखने वाले हैं।¹⁰

प्रजापति के समान पालक, श्री सम्पन्न, वैरिविध्वंसक और जीवों तथा धर्म के रक्षक हैं।¹¹ स्वधर्म और स्वजनों के पालक, वेद - वेदाङ्गों के ज्ञाता तथा धनुर्वेद में प्रवीण हैं।¹² वे अखिल शास्त्रों के तत्त्वज्ञ, स्मरणशक्ति से युक्त और प्रतिभासम्पन्न हैं। अच्छे विचार और उदार हृदय वाले श्रीरामचन्द्र जी बातचीत करने में चतुर तथा समस्त लोकों के प्रिय हैं।¹³

- 8. महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्द्रमः।
आजानुबाहुः सुशिरा: सुललाटः सुविक्रमः॥
वही 1.10
- 9. समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥
वही 1.11
- 10. धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥
वही 1.12
- 11. प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता: जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥
वही 1.13
- 12. रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥
वही 1.14
- 13. सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥
वही 1.15

श्री राम से सज्जन पुरुष उसी प्रकार आ - आकर मिलते हैं, जैसे नदियां समुद्र से मिलती हैं। वे आर्य अर्थात् श्रेष्ठ हैं, सबको समान भाव से देखते हैं और उनका दर्शन सदा ही प्रीतिदायक हैं।¹⁴ वे माता के आनन्द को बढ़ाने वाले, गम्भीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान हैं।¹⁵ विष्णु के समान बलवान्, चन्द्रमा के समान मनोहर, क्रोध में कालाग्नि के समान और क्षमा में पृथ्वी के समान, त्याग में कुबेर और सत्य के पालन में स्वयं धर्मराज के समान हैं।¹⁶ देवर्षि नारद द्वारा बताये गये उपयुक्त राम के गुणों में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक सभी प्रकार के गुणों का समावेश हो गया है।

इन सभी गुणों की चर्चा रामायण में बहुत विस्तार से हुई है। उन सबका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है। अतः कुछ चुने हुए प्रेरक प्रसंगों को ही लिख रहा हूँ।

राम के गुणों का प्रबल प्रभाव यह था कि परिवार के सभी सदस्य उनसे बहुत प्यार करते थे। जिस समय राम के राज्य अभिषेक की घोषणा की गई तो पूरे राजमहल में खुशी की लहर दौड़ गई। जब यह समाचार कैकेयी की दासी मंथरा ने सुना तो वह ईर्ष्या से भर कर कैकेयी के पास गई। कैकेयी

14. सर्वदाभिगतः सदभिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥

वही 1.16

15. स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्यण हिमवानिव॥

वही 1.17

16. विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः॥

वही 1.18

उस समय सो रही थी, उसको जगाया और कहने लगी, तुम पर विपत्ति का पहाड़ टूट रहा है और तुम आनन्द की नींद सो रही हो। कल महाराजा दशरथ राम का राज्य अभिषेक कर देंगे। महाराजा दशरथ ने तुम्हारे पुत्र भरत को छल करके ननिहाल भेज दिया है। जिससे कि राम का राज्य अभिषेक निर्विघ्न हो जाए। राम के राजा बनने पर कौशल्या का सम्मान पूरे राज्य में होगा और तुम्हें पूछने वाला भी कोई नहीं रहेगा। इस बात को सुनकर कैकेयी मन ही मन अत्यन्त संतुष्ट हुई। विस्मयविमुग्ध हो मुस्कुराते हुए उसने कुब्जा को पुरस्कार के रूप में एक बहुत सुन्दर दिव्य आभूषण प्रदान किया।¹⁷ कुब्जा को वह आभूषण देकर हर्ष से भरी हुई कैकेयी ने पुनः मन्थरा से इस प्रकार कहा - मन्थरे! यह तूने मुझे बड़ा ही प्रिय समाचार सुनाया। तूने मेरे लिए जो यह प्रिय संवाद सुनाया, इसके लिए मैं तेरा और कौन सा उपकार करूँ।¹⁸ मैं तो राम और भरत में कोई भेद ही नहीं समझती। अतः यह जानकर कि राजा श्री राम का अभिषेक करने वाले हैं, मुझे बड़ी खुशी हुई है।¹⁹

मन्थरे! तू मुझसे प्रिय वस्तु पाने के योग्य है। मेरे लिये श्री राम के अभिषेक सम्बन्धी इस समाचार से बढ़कर दूसरा कोई प्रिय एवं अमृत के समान मधुर वचन नहीं कहा जा सकता। ऐसी परम प्रिय

17. अतीव सा तु संतुष्टा कैकेयी विस्मयान्विता।
दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्॥ वा.राम.अयोध्याकाण्ड 7.3.2

18. दत्र्वा त्वाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रमदोत्तमा।
कैकेयी मन्थरां हृष्टा पुनरेवाब्रवीदिदम्॥
इदं तु मन्थरे मह्यमारव्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमारव्यातं किं वा भूयः करोमि ते॥ वही 7.3.3 - 3.4

19. रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्ष्यते।
तस्मात् तुष्टास्मि यद् राजा रामं राज्येऽभिषेक्यति॥ वही 7.3.5

बात तुमने कही है; अतः अब यह प्रिय संवाद सुनाने के बाद तू
कोई श्रेष्ठ वर माँग ले, मैं उसे अवश्य दूँगी।²⁰

इन्हीं भावों को गोस्वामी तुलसीदास ने सुन्दर शब्दों में
पिरोकर इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

सुदिनु सुमंगल दायकु सोई।

तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई।

यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥

राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली।

देउँ मागु मन भावत आली॥

कौसल्या सम सब महतारी।

रामहि सहज सुभायँ पिआरी॥

मो पर करहिं सनेहु बिसेषी।

मैं करि प्रीति परीछा देखी।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू।

होहुँ राम सियपूत पुतोहू॥

प्रान तें अधिक रामू प्रिय मोरें।

तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें॥

(रामचरितमानस अयोध्या काण्ड 15)

कैकेयी की इस बात को सुनकर मन्थरा परेशान हो गई और

20. न मे परं किंचिदितो वरं पुनः:

प्रियं प्रियेर्ह सुवचं वचोऽमृतम्।

तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं

वरं परं ते प्रददामि तं वृणु॥

वही 7.36

उसने अनेक प्रकार से कैकेयी को बहकाना प्रारम्भ किया - तुम
और तुम्हारे पुत्र के लिए राम का राजा बनना किसी भी प्रकार
शुभ नहीं है और उसका दिया हुआ दिव्य आभूषण उतार कर फैक
दिया। इसी प्रकार की बहुत से उकसाने वाली बातें मन्थरा ने की
तो भी कैकेयी के मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह राम के
गुणों की प्रशंसा करते हुए कहने लगी :-

कुब्जे! श्री राम धर्म के ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ,
सत्यवादी और पवित्र होने के साथ ही महाराज के ज्येष्ठ पुत्र हैं;
अतः युवराज होने के योग्य वे ही हैं।²¹ वे दीर्घजीवी होकर अपने
भाइयों और भूत्यों का पिता की भाँति पालन करेंगे। कुब्जे!
उनके अभिषेक की बात सुनकर तू इतनी जल क्यों रही है?²²
मेरे लिए जैसे भरत प्यारा है उससे भी बढ़कर श्री राम हैं; क्योंकि
वे कौशल्या से भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं।²³ यदि श्री
राम को राज्य मिल रहा है तो उसे भरत को मिला हुआ समझ;
क्योंकि श्री रामचन्द्र अपने भाइयों को भी अपने ही समान
समझते हैं।²⁴

21. धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाङ्छुचिः।

रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हतिः॥

(वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड 8.14)

22. आतृन् भूत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति।

संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्॥

वही 8.15

23. यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।

कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु॥

वही 8.18

24. राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत् तदा।

मन्यते हि यथाऽत्मानं यथा आतृस्तु राघवः॥

वही 8.19

कैकेयी की राम के प्रति यह भावना अकारण नहीं थी। राम के अन्दर गुण ही इतने थे कि जिससे सभी उनके गुणों पर मोहित थे। परन्तु मन्थरा कहाँ मानने वाली थी। ओछे विचारों वाले व्यक्ति को अपने पास रखने का जो दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है उसी के बशीभूत कैकेयी भी हो गई और मन्थरा के बहकावे में आ गई। तुलसीदास जी ने ठीक ही लिखा है कि :-

**को न कुसंगति पाइ नसाई।
रहइ न नीच मतें चतुराई॥**

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड - 24)

अर्थात् - कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता। नीच की बात मानकर बुद्धिमानों की बुद्धि भी नष्ट हो जाती है।

कैकेयी भी मन्थरा के बहकावे में आ गई और राजा दशरथ ने युद्ध के अवसर पर प्राण बचाने के फलस्वरूप उसे जो दो वर दिये थे, उनको राजा से मांगते हुए कहा कि - प्रथम वर के रूप में भरत को राज्य दीजिए तथा दूसरे वर के रूप में राम को चौदह वर्ष का वनवास दीजिए। यदि आपने मुझे दिये वचन के अनुसार ये दोनों वर नहीं दिये तो मैं प्राण त्याग दूँगी।

इस बात को सुनकर दशरथ ने उसे भला - बुरा कहा और बहुत दुःखी हुए, लेकिन कैकेयी अपनी बात पर अड़िग रही। जब राम को दशरथ के पास बुलाया गया तो राम ने माता कैकेयी और पिता श्री के चरणों में झुककर प्रणाम किया। पिता की चिन्तित अवस्था को देखकर राम ने माता कैकेयी से पूछा कि क्या पिता मुझसे रुष्ट हैं? क्या मुझसे कोई अपराध हो गया है? कैकेयी ने कहा तुम्हारे पिता जी तुमसे एक बात कहना चाहते हैं, लेकिन किसी कारण कह नहीं पा रहे हैं। यदि तुम ये बात स्वीकार करो

कि उचित - अनुचित जो कुछ वे कहें उसको मैं मान लूँगा तो मैं ही उस बात को बता दूँगी। कैकेयी की इस बात को सुनकर राम बहुत दुःखी हुए और कहने लगे। अहो! देवि धिक्कार है, आपका यह कहना ठीक नहीं है। मैं महाराज की आज्ञा से आग में कूद सकता हूँ। हलाहल विष पी सकता हूँ, समुद्र में छलांग लगा सकता हूँ। महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं। मैं उनकी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता?

अतः महाराज की जो इच्छा हो वह मुझे बताओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उसे पूरा करूँगा। राम दो तरह की बातें नहीं करता (रामो द्विन् भाषते)। राम की इस प्रतिज्ञा को सुनकर कैकेयी बोली कि - एक बार देवासुर संग्राम में मैंने तुम्हारे पिता के प्राण बचाये थे, तब उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी। वे दोनों वर आज मैंने मांग लिये हैं। इसमें पहले वर में भरत के लिए राज्य और दूसरे वर में तुम्हारे लिए चौदह वर्ष का वनवास मांगा है। तुम इनका पालन करो और वन में चले जाओ। राम इस बात को सुनकर किंचित भी विचलित नहीं हुये और कैकेयी से कहने लगे कि हे माँ! यह काम तो मैं तुम्हारे कहने से ही कर सकता था। तुमने इस बात के लिए पिता जी को क्यों कष्ट दिया? मालूम होता है कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं जो तुमने यह बात मुझसे न कहकर पिताजी से कहलवायी।²⁵

क्या संसार के इतिहास में ऐसा उदाहरण देखने को मिलेगा कि दूसरी माता की अनुचित बात को मानकर सौतेले

25. न न्यूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान्।

यद् राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती॥

वात्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, 19.24

भाई के लिए कोई राज्य छोड़कर वनवास में चला जाये? यही है रघुकुल की मर्यादा, जिसका पालन करके राम मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये। कौशल्या ने जब राम को वन में जाने के लिए रोकना चाहा तो राम ने विवश होकर कहा - हे माँ! मुझ में पिता जी की आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति नहीं है। लक्ष्मण ने रोष, उत्साह और ओजपूर्ण स्वर में राम को वन में जाने से रोकते हुए कहा कि - मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि श्री राम राज छोड़कर वन में जाएं। महाराज इस समय स्त्री की बात में आ गये हैं, वे बूढ़े होने पर भी कामदेव के वशीभूत होकर विवेक शून्य हो गये हैं। हे रघुनन्दन! आप शासन की बागड़ेर अपने हाथ में ले लीजिए, जो भी आपके विरोध में होकर भरत का पक्ष लेगा, मैं उसका वध कर दूँगा।

यदि पिताजी कैकेयी के बहकावे में आकर ऐसा अनुचित कदम उठा रहे हैं तो हमें भी उन्हें मोह-ममता छोड़कर कैद कर लेना चाहिए या मार डालना चाहिए। क्योंकि यदि गुरु भी घमण्ड में आकर कर्तव्य - अकर्तव्य का विवेक खोकर कुमार्ग पर चलने लगे तो उसे दण्ड देना आवश्यक हो जाता है। जो वृद्धावस्था के कारण एवं कैकेयी में आसक्तचित होकर अविवेकी और दीन-हीन हो रहे हैं, उन वृद्ध पिता को मैं अवश्य मार डालूँगा। लक्ष्मण के रोषपूर्ण शब्दों को सुनकर राम बोले - हे लक्ष्मण! तुम्हारे पराक्रम, धैर्य, तेज और मेरे प्रति जो तुम्हारा स्नेह है उसको मैं जानता हूँ। संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। धर्म में ही सत्य की प्रतिष्ठा है। पिता जी का यह वचन भी धर्म के आश्रित होने से परम उत्तम है। हे वीर! धर्म का पालन करने वाले प्रतिज्ञा करके तोड़ा नहीं करते। मैं पिता जी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। इसलिए तुम केवल क्षात्र धर्म वाली

अनार्य बुद्धि को छोड़कर धर्म का आसरा लो।

जिस कर्म से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थों की प्राप्ति न हो, वह नहीं करना चाहिए। वही कर्म सुखदायक होता है जिससे धर्म की सिद्धि होती है। जो व्यक्ति केवल धन की ही कामना करता है, वह सबके द्वेष का पात्र बन जाता है। धर्म को छोड़कर केवल काम में अत्यन्त आसक्त हो जाना निन्दा की बात है। हे लक्ष्मण! महाराजा दशरथ हमारे पिता होने के साथ हमारे राजा भी हैं। यदि वे क्रोध, हर्ष अथवा काम से प्रेरित होकर भी कोई आज्ञा देते हैं तो हमें धर्म समझकर उनका पालन करना चाहिए। यह है - राम की पितृभक्ति। इसी के कुछ उदाहरण और देखिए :-

राम वनवास को जाने लगे तो दशरथ ने कहा कि - हे रघुनन्दन! मैं कैकेयी को दिए हुए वचन के कारण विवेक शून्य हो गया हूँ। तुम मुझे कैद करके स्वयं ही अयोध्या के राजा बन जाओ।²⁶ पिता जी का यह वचन सुनकर श्री राम दोनों हाथ जोड़कर बोले - हे महाराज! आप चिरकाल तक पृथ्वी पर राज्य करें। मुझे राज्य का लोभ नहीं है।

मेरी न सुख की इच्छा, न पृथ्वी की, न सम्पूर्ण भोगों की, न जीवन की। मेरी तो एक ही इच्छा है कि आपका वचन मिथ्या न हो। आप सत्यावादी बने रहें। यह बात मैं आपके सामने सत्य और शुभ कर्मों की शपथ खाकर कहता हूँ। पिता को देवताओं का भी देवता माना गया है। इसी कारण मैं देवता समझकर आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ प्रसन्नतापूर्वक वन में रहूँगा।

26. अहं राघव कैकेया वरदानेन मोहितः।

अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्॥

वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, 34.26

और चौदह वर्ष की समाप्ति पर प्रतिज्ञा पूरी करके वापिस आकर पुनः आपके चरणों का स्पर्श करूँगा।²⁷

जब राम युवावस्था में राज्याभिषेक के आसन को छोड़कर वन में जाने लगे तो उनके चेहरे पर विषाद की एक भी रेखा नहीं थी।

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया॥

(वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड 19.33)

अर्थात् - वे वन में जाने को उत्सुक थे और सारी पृथ्वी का राज्य छोड़ रहे थे; फिर भी उनके चित्त में सर्वलोकातीत जीवन्मुक्त महात्मा की भाँति कोई विकार नहीं देखा गया।

महान् पुरुषों का यही लक्षण होता है कि वे उसी प्रकार

27. नहि मे काङ्क्षतं राज्यं सुखमात्मनि वा प्रियम्।
यथानिदेशं कर्तुं वै तवैव रघुनन्दन॥

वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, 34.45

नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न च मेदिनीम्।
नैव सर्वानिमान् कामन् न स्वर्गं न च जीवितुम्।

वही, 34.47

त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ।
प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन च ते शपे॥

वही, 34.48

पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम्।
तस्मात् दैवतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः॥

वही, 34.52

नव पञ्च च वर्षाणि वनवासे विहृत्य ते।
पुनः पादौ ग्रहीष्यामि प्रतिज्ञान्ते नराधिपः॥

वही, 34.29

मान - अपमान, सुख - दुःख, लाभ - हानि में एक समान रहते हैं, जिस प्रकार उदित और अस्त होता हुआ सूर्य दोनों अवस्थाओं में लाल ही रहता है।²⁸ इस प्रकार का धैर्यशाली पुरुष इतिहास में ढूँढ़ने पर भी नहीं दिखाई देगा।

राम का अतुल पराक्रमः यदि गुणों के साथ पराक्रम न हो तो लोक में उसका सम्मान नहीं होता। राम का इतना सम्मान इसीलिए है कि वे अद्वितीय पराक्रमी भी थे। महर्षि विश्वामित्र दशरथ के पास आये और प्रार्थना की कि - मारीच और सुबाहु नामक दोनों राक्षस बहुत ही बलवान् तथा शस्त्र - अस्त्र विद्या में निपुण हैं। वे हमारे यज्ञों में विघ्न डालते हैं। आप अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को मुझे दे दो। राम ही उन राक्षसों को नष्ट कर सकते हैं।

न च तौ राघवादन्यो हन्तुमुत्सहते पुमान्।

(वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 19.12)

इस समय राम की आयु सोलह वर्ष से कम थी। इसी कारण दशरथ चिन्तित हो गए कि कहीं बालक राम का अनिष्ट न हो जाये। वसिष्ठ के समझाने पर उन्होंने राम तथा लक्ष्मण दोनों को विश्वामित्र के साथ भेज दिया।

विश्वामित्र ने मार्ग में जाते हुए राम व लक्ष्मण को बताया कि यह जनविहीन वन, सुन्द की स्त्री ताटका नामक राक्षसी का निवास स्थान है। उसके भय से सब लोग यहाँ से चले गये हैं। अब तुम उस मायाविनी स्त्री का वध करके जनता का कल्याण करो। प्रजा की रक्षा ही क्षत्रिय का धर्म है। विश्वामित्र की बात सुनकर राम हाथ जोड़कर बोले - हे महर्षे! मैं आपकी आज्ञानुसार देशवासियों,

28. उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥

विद्वानों और गौहित के लिए ताटका का वध करने के लिए तैयार हूँ। यह कह कर राम ने धनुष की टंकार से घोर शब्द किया। शब्द सुनते ही ताटका राम और लक्ष्मण की तरफ दौड़ी। वह इच्छानुसार रूप धारण करने वाली यक्षणी थी। उसका शरीर बहुत विशाल और भयंकर था। उसने अनेक प्रकार से अपनी माया दिखाई, परन्तु राम ने एक ही बाण से उसका वध कर दिया। राम के इस पराक्रम को देखकर विश्वामित्र ने राम को उपयुक्त पात्र समझ कर सभी प्रकार के अस्त्र एवं शस्त्र प्रदान किये और उनके संचालन की सभी विधि बतलाई। इसके बाद विश्वामित्र अपने आश्रम में गए, जहाँ पर दोनों भाइयों ने यज्ञ की रक्षा करते हुए सभी राक्षसों का संहार किया। राम के पराक्रम की यह पहली परीक्षा थी। उनके पराक्रम की दूसरी परीक्षा सीता के स्वयंवर में दिव्य धनुष को तोड़ने के समय हुई।

जिस धनुष को बड़े - बड़े महारथी हिला भी न सके, उसको श्री राम ने अनायास ही तोड़ डाला। इक्कीस बार क्षत्रियों को युद्ध में पराजित करने वाले परशुराम के घमण्ड को भी श्री राम ने ही ठीक किया था। पंचवटी में चौदह हजार राक्षसों तथा खरदूषण और त्रिशिरा नामक राक्षसों का राम ने अकेले ही वध कर दिया था। बालि वध, रावण, कुम्भकरण आदि का संहार उन्हीं के पराक्रम का परिणाम है। राम के पराक्रम के विषय में रामायण में आलंकारिक वर्णन करते हुए वाल्मीकि ने समुद्र निग्रह का प्रसंग लिखा है कि - राम तीन दिन तक समुद्र से अनुनय - विनय करके थक गये, परन्तु समुद्र टस से मस न हुआ। तब राम रोषपूर्ण शब्द लक्ष्मण से कहने लगे -

**बिन्य न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥**

(रामचरितमानस सुन्दर काण्ड - 57)

हे लक्ष्मण! शान्ति, क्षमा, सरलता और मधुर भाषण

सज्जनों के इन गुणों को गुणहीन लोग उनकी कमज़ोरी मानने लगते हैं। शान्ति के द्वारा इस लोक में न तो यश मिलता है, न संग्राम में विजय। जो कुटिल, दुष्ट अपनी प्रशंसा करने वाला अच्छे - बुरे सभी लोगों पर कठोर दण्ड का प्रयोग करता है, सब उसी का सत्कार करते हैं। यह कहकर जब राम ने धनुष उठाया तो समुद्र भी भयभीत होकर क्षमा मांगने लगा। यह है - पराक्रम का परिणाम।

धर्म की मर्यादा को राम ने पूर्ण रूप से निभाया है। उनके लिए “धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः” धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों के ज्ञाता, यह विशेषण दिया गया है। जब राम ने बालि का वध किया तो बालि ने धर्म की दुहाई देकर उनके कार्य को अन्यायपूर्ण बताया। तब राम ने तर्कपूर्ण युक्ति से उसकी बातों का खण्डन करते हुए कहा कि तुम धर्म को जानते ही नहीं हो। इसी कारण तुमने सनातन धर्म का त्याग करते हुए अपने छोटे भाई की स्त्री जो तुम्हारी पुत्रवधू के समान है, उसको बलपूर्वक अपने पास रख कर अपनी वासना का शिकार बनाया है। इसी कारण मैंने तुम्हारा वध किया है। क्योंकि जो पुरुष अपनी कन्या, बहन और छोटे भाई की स्त्री के पास काम - बुद्धि से जाता है, उसका वध करना ही, उसके लिए उपयुक्त दण्ड बताया गया है।²⁹ दूसरा उदाहरण शरणागत की रक्षा का है। जब विभीषण राम की शरण में आते हैं तब सुग्रीव आदि सभी ये समझते हैं कि रावण की यह कोई चाल है? और वे उसका वध करने की राम को सलाह देते हैं। तब राम राजधर्म का उल्लेख करते हुए कहते हैं - यदि शत्रु भी शरण में आये और दीनतापूर्वक

29. तदेतत् कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्॥
औरसीं भगिनीं वापि भार्या वाप्यनुजस्य यः।
प्रचरेत नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः॥

(वाल्मीकि रामायण किञ्चिन्धाकाण्ड 18.18,22)

हाथ जोड़कर प्रार्थना करे तो उसको नहीं मारना चाहिए। शत्रु दुःखी हो अथवा अभिमानी। यदि वह अपने विपक्ष की शरण में आ जाये तो धर्मात्मा पुरुष को अपने प्राणों का मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिए।

राम की कृतज्ञता : – वाल्मीकि ने राम के कृतज्ञ स्वभाव का वर्णन करते हुए लिखा है –

न स्मरत्यपकारणं शतमप्यात्मवत्तया।
कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति॥

मन पर नियन्त्रण रखने के कारण वे दूसरों द्वारा किये हुए सौ-सौ अपराधों को भी भुला देते हैं, कभी एक को भी याद नहीं रखते, परन्तु यदि कोई किसी प्रकार एक बार भी उपकार कर दे तो उसी से सदा सन्तुष्ट रहते हैं, सर्वदा उस एक ही उपकार को याद रखते हैं।

राज्याभिषेक के पश्चात् जब रामचन्द्र जी हनुमान को विदा करते हैं तो उनके एक-एक उपकार को स्मरण करके गद-गद हो उठते हैं और उसको हृदय से लगाकर कहते हैं – हे हनुमान! तुमने मेरे ऊपर इतने उपकार किए कि उनमें से एक-एक के बदले मैं प्राण दे सकता हूँ। तुम्हारे शेष उपकारों के लिए तो मैं ऋणी ही रह जाऊँगा। हे कपि श्रेष्ठ! मैं तो यही चाहता हूँ कि तुमने जो-जो उपकार किये हैं, वे सब मेरे शरीर में ही पच जाएं। उनका बदला चुकाने का मुझे कभी अवसर न मिले; क्योंकि पुरुष को उपकार का बदला चुकाने का अवसर उपकार करने वाले मित्र आदि के विपक्षि में पड़ने पर ही मिलता है। मैं नहीं चाहता कि तुम भी संकट में पड़ो और मैं तुम्हारे उपकार का बदला चुकाऊँ।³⁰

रामचन्द्र जी का सदाचार : रामचन्द्र जी चरित्र के पालन में अद्वितीय हैं। उनका एक पत्नी व्रत सर्वत्र प्रसिद्ध है। जब वे विश्वामित्र के साथ जनकपुरी में गये तो वहाँ पर पुष्पवाटिका में सीता के सौन्दर्य को देखकर उनका मन उसकी ओर आकृष्ट हुआ। वे चकित हो गए। ये जीवन की प्रथम घटना थी। उनके मन में कोई कलुषित वासना नहीं थी। वे लक्ष्मण जी से कहने लगे :-

जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा।
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भाता॥

(रामचरितमानस बालकाण्ड 231)

अर्थात् – जिसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर स्वभाव से ही पवित्र मेरा मन क्षब्द्य हो गया है। उसका कारण सब कारण तो विधाता जानें। किन्तु हे भाई! सुनो, मेरे मंगलदायक (दाहिने) अंग फड़क रहे हैं।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ ।

मनु कुपथ पगु धरइ न काऊ॥

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी।

जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

(रामचरितमानस बालकाण्ड 231)

अर्थात् – रघुवंशियों का यह जन्मजात स्वभाव है कि उनका मन कभी कुमार्ग पर पैर नहीं रखता। मुझे तो अपने मन का अत्यन्त ही विश्वास है कि जिसने स्वप्न में भी परायी स्त्री

30. एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।

शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥

मदह्ने जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।

नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥

(वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 40.23,24)

पर दृष्टि नहीं डाली है।

यह है राम का आत्मविश्वास। इसी विश्वास को राम ने आजीवन बनाये रखा। माया से मनोहर रूप धारण करके शूर्पणखा मुस्कुराकर राम से कहने लगी -

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी।

यह सँजोग विधि रचा बिचारी।

मम अनुरूप पुरुष जगमाहीं।

देखऊँ खोजि लोक तिहु नाहीं॥

तातें अब लगि रहि ऊँ कुमारी।

मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥

(रामचरितमानस अरण्यकाण्ड, 16)

अर्थात् - न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री। विधाता ने यह जोड़ा विचार कर रखा है। मैंने तीनों लोकों को खोजकर देख लिया। मेरे योग्य पुरुष जगत् भर में नहीं है। इसी कारण मैं अब तक कुमारी (अविवाहित) हूँ। अब तुम्हे देखकर मेरा मन शादी करने के लिए तैयार हुआ है।

राम के मन में उसके प्रति किंचित भी विकार न आया और न ही उन्होंने उनकी तरफ आँख उठाकर देखा, परन्तु उसकी कुटिलता को भांप गये कि यह विवाहिता होकर भी अपने को कुमारी बता रही है तो उन्होंने भी सीता की ओर देखते हुए परिहास में कहा -

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता।

अहइ कुआर मोर लघु भाता।

(रामचरितमानस अरण्यकाण्ड 16)

अर्थात् - जैसी तू कुमारी है उसी तरह मेरा छोटा भाई भी कुमार (अविवाहित) है। यह है राम का आदर्श चरित्र। क्या राम के पुजारी इसका अनुकरण करेंगे? राम के चरित्र के प्रताप को किसी कवि ने अपनी कल्पना शक्ति से बहुत ही सुन्दर रूप में उभारा है। जब रावण सीता को उठाकर ले गया तो उसने सीता को अपने वश में करने के लिए विभिन्न प्रकार के भय और प्रलोभन दिखाए, लेकिन पतिव्रता सीता ने उसको हर बार फटकार लगाई। किसी ने रावण को सलाह दी कि तुम अपनी माया से राम का रूप धारण करके सीता के पास जाओगे तो वह तुम्हें राम समझकर अपना लेगी। रावण कहता है कि मैंने यह प्रयास करके देख लिया लेकिन असफल ही रहा। मैं जब राम का रूप बनाता हूँ, तब मुझे परायी नारी माता के समान दिखाई देने लगती है। इन्हीं भावों को कवि के शब्दों में देखिए -

तुम राम को रूप अनूप धरो,

पुनि जावहु बेगी सिया ढिंग भाई।

गिलि हे उठि दोरि के बेगि सिया,

जिय जानि तुम्हें सुपिया रघुराई॥

यह कारज हुँ करि देखिव लियो,

नहीं पाइ सक्यो किंचित सफलाई।

जब राम को रूप बनावत हों,

तब मातुसी दीखवत नारि पराई॥

इसी प्रसंग में लक्ष्मण के चरित्र पर भी दृष्टिपात कीजिए - जिस समय सीता हरण के बाद राम, लक्ष्मण किञ्चिन्द्या में सुग्रीव के पास पहुँचे तो उन्होंने राम को जंगल से मिले हुए कुछ

आभूषण दिखाये। ये आभूषण रावण द्वारा बलात् हरण करके ले जाती हुई सीता ने उतार कर फैके थे। राम ने लक्ष्मण से कहा भैया देखो ये आभूषण तुम्हारी भाभी के तो नहीं है? राम की बात सुनकर लक्ष्मण ने कहा :-

नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुण्डले।

नूपुरं त्वभिं जानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

(वाल्मीकि किंबिक्न्धा काण्ड 6.22)

अर्थात् - मैं माता सीता के कुण्डल और भुजबन्ध को नहीं पहचान सकता, क्योंकि मैंने तो सदैव उनके चरणों में ही दृष्टि रखी है। इसलिए केवल पांव की अंगुलियों के नूपुर (बिछुवे) ही पहचान सकता हूँ। यह है रघुवंशियों का चरित्र।

भ्रातृप्रेम

श्री राम का भ्रातृप्रेम भी संसार के लिए एक आदर्श है। वे अपने भाइयों की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखते थे। उनकी भावनाएं कहीं आहत न हों, वे निराश होकर न बैठ जाएं, इसलिए खेलते समय वे स्वयं हारकर अपने भाइयों को जिता देते थे।

जिस समय भरत चित्रकूट में राम से मिलने गये तो लक्ष्मण को यह शंका हुई कि भरत किसी दुर्भावना से हमारे पास आ रहे हैं, यह सोचकर उन्होंने राम से कहा कि हम को भरत का वध कर देना चाहिए। राम ने लक्ष्मण को समझाते हुए कहा कि- लक्ष्मण! पिता के सत्य की रक्षा के लिये प्रतिज्ञा करके यदि मैं युद्ध में भरत को मारकर उनका राज्य छीन लूँ तो संसार में मेरी कितनी निन्दा होगी, फिर उस कलंकित राज्य को लेकर मैं क्या

करूँगा?

अपने बन्धु-बान्धवों या मित्रों का विनाश करके जिस धन की प्राप्ति होती हो, वह तो विषमिश्रित भोजन के समान सर्वथा त्याग देने योग्य है, उसे मैं कदापि ग्रहण नहीं करूँगा। लक्ष्मण! मैं तुम से प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि - धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वी का राज्य भी मैं तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूँ।

सुमित्राकुमार! मैं भाइयों के संग्रह और सुख के लिये ही राज्य की भी इच्छा करता हूँ और इस बात की सच्चाई के लिये मैं अपना धनुष छूकर शपथ खाता हूँ। सौम्य लक्ष्मण! समुद्र से घिरी हुई यह पृथ्वी मेरे लिये दुर्लभ नहीं है, परन्तु मैं अधर्म से इन्द्र का पद पाने की भी इच्छा नहीं कर सकता।

हे लक्ष्मण! भरत को, तुम को और शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उसे अग्निदेव जलाकर भस्म कर डालें।

वीर! पुरुषप्रवर! भरत बड़े भ्रातृभक्त हैं। वे मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, भरत ने अयोध्या में आने पर जब सुना है कि मैं तुम्हारे और जानकी के साथ जटा - वल्कल धारण करके वन में आ गया हूँ, तब उनकी इन्द्रियाँ शोक से व्याकुल हो उठी हैं और वे कुल धर्म का विचार करके स्नेहयुक्त हृदय से हम लोगों से मिलने आये हैं। इन भरत के आगमन का इसके सिवा दूसरा कोई उद्देश्य नहीं हो सकता।

माता कैकेयी के प्रति कुपित हो, उन्हें कठोर वचन सुनाकर और पिता जी को प्रसन्न करके श्रीमान् भरत मुझे राज्य देने के लिये आये हैं। भरत का हम लोगों से मिलने के लिये आना सर्वदा समयोचित है। वे हम से मिलने के योग्य हैं। हम लोगों का कोई अहित करने का विचार तो वे कभी मन में नहीं ला सकते।

भरत ने तुम्हरे प्रति पहले कब कौन-सा अप्रिय बर्ताव किया है, जिससे आज तुम्हें उनसे ऐसा भय लग रहा है और तुम उनके विषय में इस तरह की आशंका कर रहे हो?

भरत के आने पर उनसे कोई कठोर या अप्रिय वचन न बोलना। यदि तुमने उनसे कोई प्रतिकूल बात कही तो वह मेरे ही प्रति कही हुई समझी जायेगी।

सुमित्रानन्दन! कितनी ही बड़ी आपत्ति क्यों न आ जाए, पुत्र अपने पिता को कैसे मार सकते हैं? अथवा भाई अपने प्राणों के समान प्रिय भाई की हत्या कैसे कर सकता है? यदि तुम राज्य के लिये ऐसी कठोर बात कहते हो तो मैं भरत से मिलने पर उन्हें कह दूँगा कि तुम यह राज्य लक्षण को दे दो।

लक्षण! यदि मैं भरत से यह कहूँ कि ‘तुम राज्य इन्हें दे दो’ तो वह ‘बहुत अच्छा’ कहकर अवश्य मेरी बात मान लेंगे। यह है राम का अपने भाईयों के प्रति प्यार और उन पर विश्वास। यदि ऐसा प्यार और इतना विश्वास भाई-भाई में आज हो जाये तो यह संसार स्वर्ग हो जाए।

राम का आत्मज्ञान

श्री राम आत्मज्ञानी हैं, इसी कारण वे सुख और दुःख में सदा एक समान रहते हैं। आत्मज्ञानी होने के कारण उन्होंने क्रोध पर विजय पा ली है। जहाँ लोक कल्याण के लिये क्रोध आवश्यक है, वहाँ वे क्रोध करते हैं। अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए नहीं। इसलिए उन्होंने मंथरा जैसी दासी पर भी कभी क्रोध नहीं किया, जिसने राम को राजतिलक वंचित कराकर वनवास करवाया था। उन्होंने कभी मंथरा के अपराध की चर्चा तक भी नहीं की। एक दिन वन में जब लक्षण ने कैकेयी पर आक्षेप किया तो राम ने रोकते हुए कहा-

“न ते म्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।”

अर्थात् हे लक्षण! वे तुम्हारी मङ्गली माँ हैं, उनकी निन्दा मत किया करो।

राम का प्रजा प्रेम

प्रजा के हित में राम सदा संलग्न रहते थे। प्रजा भी उनसे अपार प्रेम रखती थी। जब वे वन में जाने लगे तो अयोध्या की सारी प्रजा उनके साथ जाने को तैयार हो गई। प्रजा की प्रसन्नता के लिए ही उन्होंने अपने प्राणों से प्यारी पत्नी सीता को भी वन में भेज दिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री राम मर्यादाओं के पालक थे। जिन्होंने आर्य संस्कृति की रक्षा ही नहीं की अपितु स्वयं आर्य संस्कृति के अनुरूप बनकर संसार के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

एकांकी नाटक केवट संवाद

सुरसरि (गंगा नदी की शाखा) के किनारे पर एक तरफ दूर नाव पड़ी है। इसी किनारे पर दूसरी ओर केवट एक चटाई पर बैठा है। चिलम हाथ में है।

केवट की ड्रेस : सिर पर एक लुंगी बंधी हुई, तन पर और कोई कपड़ा नहीं। बोडी पर पाउडर (Powder) साथ में चिलम, नीचे कमर में धोती, जूते नहीं। (सामने से वनवासी वेष में राम, लक्ष्मण और सीता आते हैं)

राम : केवट भैया नाव लाओ। हमको उस पार जाना है। नाव से पार उतार दो।

केवट : महाराज प्रणाम! नाव तो है, परन्तु लाऊँगा नहीं।

राम : क्यों नहीं लाओगे भाई।

केवट : महाराज आपके पावं की धूल में जादू है जादू। अनोखी आपकी छबि दूर से ही मैंने जानी है। धनुष छूते ही टूटा था, अभी ताजा कहानी है॥

राम : केवट भाई, डरो मत, उत्तराई भी देंगे।

लक्ष्मण : (केवट से)

चरण धूलि की ओट में, लगा रहे हो टाल।
धनुष ध्यान से देख लो नहीं चलेगी चाल।
हम आए हैं दूर से, जाना है उस कूल।
किया बहाना धूल का, तो उड़ जायेगी धूल।
चुपचाप नाव लाओ, पार उतारो और मजदूरी लो।

राम : केवट भाई, डरो मत, उत्तराई भी देंगे। देखो भाई, विलम्ब क्यों करते हो, अविलम्ब जाना है। जीवन बदलेगा तुम्हारा, धूल तो बहाना है।

तुम्हारे परिवार की दशा, छोटे - छोटे बच्चे फटे पुराने कपड़ों की गरीबी देख दया आती है।

केवट : हे राम तुम्हारी बातों से नरमाई मुझमें आती है। पर देख आपके भाई को छाती मेरी घबराती है।

महाराज - चरण की धूल लगते ही, शिला थी बनी बन गई नारी। गई ये नाव तो सन्तान भूखों से मरे सारी। महाराज, नाव में बैठाने से पहले आपके चरणों को धो लेने दो चाहे लक्ष्मण मुझे मारे, परन्तु आपके पांव धो लेने के बाद ही नाव में बैठाऊँगा।

राम : अच्छा भाई, जो तुमको अच्छा लगे वही करो (अब केवट चरण धोता है - और गाता है)

“धोऊँ राम चरण सुखदाई।
जिन चरणन की चरण पादुका भरत रहे लवलाई
सोई चरण केवट धोइ लीने, तब हरि नाव चलाई”॥
धोऊँ...

(अब केवट - राम, लक्ष्मण, सीता तीनों को गंगा के उस पार ले जाने के लिए नाव में बिठाता है, फिर पर्दा गिरता है। और अब वे नदी के दूसरी पार होते हैं व पर्दा उठता है।)

(राम सीता की तरफ देखते हैं - फिर सीता बोलती है।)

सीता : केवट भैया - तुम उत्तराई नहीं लोगे तो हम उसे भाभी को दे देंगे, परन्तु वह बात आपको पसन्द नहीं आवेगी।

अयोध्या से चले बनवास में, बन - बन फिरेंगे हम।
रहेंगे पत्तों की कुटिया में, सफल जीवन करेंगे हम॥
पिता है सत्यवादी, उनके आदेश पथ पर ही चलेंगे हम।
तुम्हे मजदूरी चुकाए बिन, नहीं आगे बढ़ेंगे हम॥

(केवट की पत्नी सीता की तरफ आती है और प्रणाम करती है।)

केवट

की पत्नी: महारानी जू हमरों नमस्कार। उत्तराई में जो आशीर्वाद आपने दिया है - वह तीनों लोक की सम्पत्ति से कम नहीं है। लौटती बार जो कुछ आप हमको दोगे वह हम सिर पर धारण कर लेंगे।

(फिर दोनों पति - पत्नी चरणों में गिरते हैं और राम, लक्ष्मण, सीता आशीर्वाद देते हैं और पद्म गिरता है।)

एकांकी नाटक भरत मिलाप

(राम व सीता पंचवटी की कुटिया में लक्ष्मण के साथ प्रातःकाल जागते हैं। सीता, राम, लक्ष्मण बैठे हैं।) (सीता) - स्वामी प्रणाम (श्रीराम से कहती है)

सीता : “स्वामी मैंने आज ऐसा सपना देखा कि जैसे समाज को साथ लेकर भाई भरत आए हैं और आपके वियोग में उनका शरीर जैसे झुलस गया है। सारा समाज दुःखी सा है और सारी सासुऐं जिनकी दशा दुःखी और विचित्र है।

राम : (आँखों में आंसू भर आते हैं तथा चिन्ता में डूब जाते हैं

और कहते हैं) लक्ष्मण ये स्वप्न ठीक नहीं है। कोई अनचाही बात सुनाने वाला है। फिर उत्तर दिशा की तरफ देख (धूल उड़ती दिखाई दी) (इतने में ही कुछ किरात, कोल भील आदि ने सारे समाचार कहे -)

भील : “स्वामी धूल उड़ रही है एक भीड़ सी है”।

(राम चिन्ता मग्न हो जाते हैं। इतने में एक और भील ने आकर समाचार कहे -)

भील : ऐसा लगता है, भरत आ रहे हैं और उनके साथ एक बहुत बड़ी सेना भी है। (राम कुछ चिन्तित हुए कुछ प्रसन्नता के साथ बोले) (अपने आप से कहते हैं) भरत के आने का भला क्या कारण हो सकता है? क्या उन्हे पिता ने भेजा है? क्या वह अपने आप आ रहे हैं?

लक्ष्मण : बिना पूछे कुछ कहता हूं स्वामी। मैं आपका सेवक हूं। यह मेरी बात बुरी नहीं है और आप सबको अपने समान समझते हैं। परन्तु भरत आज राजपद पाकर, अवसर पाकर आपको बन में अकेले जानकर दोनों भाई सारी सेना जुटा कर आ रहे हैं। ताकि वे अकेले राज्य कर सकें। मन में कपट नहीं होता तो सेना सजा कर क्यों लाते। राज्य का घमण्ड सबको ही होता है, परन्तु आज युद्ध में राम का सामना देखकर उसको पता लग जायेगा। (इतने में लक्ष्मण आवेश में आकर, रामचरण छू कर)

लक्ष्मण : भरत से युद्ध में हम कम नहीं हैं।

राम है सिर पें, धनुष है हाथ में कोई गम नहीं है।

(लक्ष्मण की तैयारी जटा बांध कर, कमर में तरकस कसकर, धनुष बाण देख कर बोले -)

लक्ष्मण : राम का दास हूं, ये पाठ उन सबको पढ़ा दूंगा।
कटक के साथ दोनों बन्धुओं को रण में सुला दूंगा।

राम : लक्ष्मण शांत रहो, सुनो -
भरत को राज तीनों लोक का यदि मिल भी जायेगा तो
भी वह अपने सत्य से हिल ही न पायेगा। उसके
आशय की थाह मिलेगी किसको। जनकर जननी ही
जान न पाई जिसको। (साकेत)

राम : हे लक्ष्मण! तुम्हारी सौगन्ध, और पिताजी की दुहाई
देकर कहता हूं कि भरत समान प्रिय कोई नहीं है।
उसको राज का गर्व नहीं हो सकता। (अब राम - सीता
से कहते हैं -)

राम : सीते! भरत आ रहे हैं। परन्तु :-
मेरे गुण और दोष भरत से तुम मत कहना।
जानकी, जब तक रहे भरत तब तक चुप रहना।
(उधर भरत, शत्रुघ्न ने दूर से ही देखा - कि राम के
आगे लक्ष्मण खड़े थे) (भरत ने आकर राम को दण्डवत
प्रणाम किया।)

भरत : शरण हूं - शरण हूं - त्राहिमाम् त्राहिमाम् (लक्ष्मण ने
पहचान कर प्रेम पूर्वक राम से कहा) हे राम! भरत
आपको प्रणाम करते हैं (जब भरत उठे तो उनकी
यह दशा थी कि - वस्त्र कहीं गिरे, धनुष कहीं गिरा,
राम ने भरत को बल पूर्वक उठा लिया और छाती से
लगा लिया। राम और भरत का मिलन देखकर सब प्रेम
में डूब गये।)

राम : भैया भरत (गला भर आता है)। इसके बाद राम
शत्रुघ्न से मिले, केवट को भी गले लगाया। (सच्ची
भावना और प्रेम से भरत को लक्ष्मण ने प्रणाम किया।
भरत ने गले लगाया और कहा -)

भरत : भैया लक्ष्मण (फिर लक्ष्मण शत्रुघ्न से मिले। फिर
निषाद से मिले। भरत, शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने अति
प्रेम से सीता के चरणों में मस्तक रखकर नमन
किया। बार - बार प्रणाम करते देख सीता ने दोनों के
मस्तकों पर हाथ फेर कर अपने पास बैठाया) (सीता
आशीर्वाद देकर इतनी मग्न हो गई कि आँखें भर
आई) (सीता को सुखी देखकर दोनों भाई बहुत
प्रसन्न हुए)।

केवट : हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है। हे नाथ! गुरु वशिष्ठ
मुनि के साथ वाल्मीकि और विश्वामित्र आए हैं और
उनके साथ सारी माताएं तथा अयोध्या के लोग भी
आए हैं। सारे सेवक हैं, सेनापति हैं, मंत्री हैं, सब
आपसे मिलने को व्याकुल हैं। (गुरु का आगमन
सुनकर राम ने कहा -)

राम : शत्रुघ्न तुम सीता के पास बैठो (अब गुरुजन व सब
लोग आते हैं। राम जी चले, गुरु को प्रणाम किया। गुरु
जी ने दोनों भाइयों को छाती से लगाया और निम्नलिखित
ऋग्वेद के मन्त्र का उच्चारण करके आशीर्वाद दिया -
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा: स्वस्ति न पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्तिनस्ताक्ष्या अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
(ऋग्वेद - 1.89.6)

(तब केवट ने दूर से ही अपना नाम बताकर मुनि को प्रणाम किया। ऋषि ने केवट को राम सखा जानकर छाती से लगाया।) (बाकी सब से भी राम - लक्ष्मण प्रेम पूर्वक मिले। राम ने माताओं को दुःखी दशा में देखा। सबसे पहले राम ने कैकेयी के चरण छुए। राम कैकेयी से बोले -)

काल कर्म गति नहीं टले, सुनो मात धर धीर।
ईश्वर के आधीन है, मन से त्यागो पीर॥

(कैकेयी आशीर्वाद देती है, और कहती है, आयुष्मान् कल्याण हो -)

राम तुम्हारे मिलन से, हुआ मुझे संतोष।
बेटा मेरे लाडले, था मेरा ही दोष॥

दोनों भाई कौशल्या माता से बोले -

मात स्वर्ग और मोक्ष सुख, चरणों के समान।
दर्शन कर हम पा गए, जैसे तन में प्राण॥

(तब माता कौशल्या ने आशीर्वाद देते हुए कहा -)

मुझे मिल गए आज तो, मेरे चारों राम।
यह सारा वन हो गया, आज अयोध्या धाम॥

(सीता सभी सासुओं के चरण रज सिर पर लगाती है और वे आशीर्वाद देती हैं।)

सुमित्रा : जब तक गंगा यमुना की है धारा।
रहियो अटल सुहाग तुम्हारा॥

मुनि वशिष्ठः राजकुमारोऽ? देव की अकृपा से महाराज दशरथ का स्वर्गवास

हो गया है।

राम : मेरे अति प्रेम के कारण पिताजी का स्वर्गवास हुआ है। अपराधी मैं ही हूँ। सुनकर सभी व्याकुल हुए, पर मुनियों के समझाने पर शान्ति धारण की।

राम : (मुनि वशिष्ठ से) आप सब यहां हैं। पिताजी स्वर्ग पधार गए। मुझे भारी दुःख है। अतः आप अयोध्या पधारो। (निषाद फल - फूल आदि लाते हैं व बदले में कुछ नहीं लेते हैं।)

निषाद : आप बड़े पुण्यवान् - हम निषाद हैं। हमारे तो राम कृपा से - आप जैसे मेहमान आए हैं। हम आपको क्या दे सकते हैं, आपके दर्शन व सेवा का अवसर ही हमारा सौभाग्य है। (भरत सोचता है - किस प्रकार राम का अभिषेक हो सकेगा, तीर्थों का जल तो लाया हूँ। मुझे कोई उपाय नहीं समझ में आता। गुरु जी की आज्ञा होगी कि नहीं।

माता कौशल्या हठ करेगी कि नहीं। इतने में मुनि वशिष्ठ ने कहा - (भरत से) तुम दोनों भाई वनवास को चले जाओ और राम, लक्ष्मण, सीता वापस लौट जावें। भरत, शत्रुघ्न बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले -)

भरत : मैं वन में जीवन भर रह सकता हूँ। इससे अधिक मेरे लिए और कुछ नहीं है। मुनि ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा - सर्वज्ञ राम आप, पुरवासी, माताएं,

भरत, शत्रुघ्न - आप सब वही निर्णय लें जिसमें
सबका हित हो।

राम : गुरुजी आपकी सौगन्ध और पिताजी के चरणों की
दुहाई देकर कहता हूँ कि भरत जैसा भाई संसार में
नहीं हुआ। आप भरत को आदेश दो। राम बैठ गए।

भरत : (सबसे) मैं अपने स्वामी के स्वभाव को जानता हूँ, वे
अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते और मेरे ऊपर उनका
कृपा प्रेम और अधिक है। मैं बचपन से साथ रहा हूँ,
मुझे कभी नाराज नहीं किया। मुझे खेल में भी हार
जाने पर जिताते रहे।

भरत : (राम से) सबका हित आपके वापस अयोध्या लौट
जाने में ही है। भरत कहने लगे - भाई! पिता जी ने
वरदान देकर मेरी माता को सन्तुष्ट कर दिया और
माता ने यह राज्य मुझे दे दिया। अब मैं अपनी ओर
से यह शत्रु रहित राज्य आपको समर्पित करता हूँ।
आप इसका पालन एवं उपभोग कीजिए -

**सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद् ददामि तत्वैवाहं भुद्धक्ष्व राज्यमकण्टकम्॥**

(वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड 105.4)

भरत के बहुत अनुनय करने पर राम कहने लगे -
देवासुर संग्राम के समय तुम्हारी माता के उपकार से
सन्तुष्ट होकर पिताजी ने उन्हें दो वरदान दिये थे।
उन वरदानों में से एक के द्वारा तुम्हारे लिए राज्य और

दूसरे से मेरे लिए वनवास मांग लिया। पिताजी ने
उनको वर प्रदान करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की है।
पिताजी की प्रतिज्ञा सत्य सिद्ध हो, इस कारण मेरा
वनवास और तुम्हारा शासन करना सर्वथा उचित है।
(संसार के इतिहास में ऐसा उदाहरण - शायद ही
मिले। आज तो राम के अनुयायी भी तुच्छ स्वार्थों के
वशीभूत होकर भाई - भाई की हत्या कर रहे हैं।)

भरत के सभी तर्क राम ने काट दिये तो जाबालि और
महर्षि वसिष्ठ जी ने राम को समझाने का प्रयास किया,
परन्तु राम ने उनकी बात को भी विनम्रता पूर्वक अस्वीकार
कर दिया। भरत को प्यार से अपनी गोदी में बैठाकर
कहने लगे कि - चाहे चन्द्रमा से उसकी चान्दनी अलग
हो जाये, हिमालय हिम (बर्फ) का परित्याग कर दे।
अथवा समुद्र अपनी सीमा को लांघ जाये, परन्तु मैं पिताजी
की प्रतिज्ञा भंग नहीं करूँगा।

श्लोक : लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥
(वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड 112.18)

इस प्रकार जब श्री रामचन्द्रजी किसी भी प्रकार अयोध्या
लौटने को तैयार नहीं हुए तो भरत ने श्री रामचन्द्रजी के
सामने स्वर्ण - विभूषित खड़ाऊँ रखकर कहा - हे आर्य!
ये दो स्वर्ण - विभूषित पादुकायें आपके चरणों में अर्पित
हैं। आप इन पर अपने चरण रखें। श्री रामचन्द्रजी ने उन

पादुकाओं (खड़ाऊँ) को पैरों में धारण करके फिर भरत को वापिस कर दी। भरत उन पादुकाओं को सादर ग्रहण करके कहने लगा - हे भैया! आज से चौदह वर्ष तक अयोध्या के राज्यसिंहासन पर ये पादुकायें ही विराजमान रहेंगी और मैं चौदह वर्षों तक जटा एवं चीर धारण करके फल - मूल का भोजन करता हुआ आपके आगमन की प्रतीक्षा करता हुआ नगर से बाहर रहकर ही राज्य का संचालन करूँगा। और

चतुर्दशे ही सम्पूर्ण वर्षऽहनि रघूत्तम।

न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्॥

(वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड 112.25)

यदि चौदह वर्ष समाप्त होते ही नये वर्ष के प्रथम दिन आप अयोध्या नहीं पहुँचे तो मैं अग्नि में जलकर भष्म हो जाऊँगा। श्रीरामचन्द्रजी “तथास्तु” कहकर भरत और शत्रुघ्न को अपने हृदय से लगाकर कहने लगे कि “मैं तुम्हें अपनी और सीता की शपथ दिलाकर कहता हूँ कि तुम माता कैकेयी की रक्षा करना। उनके प्रति कभी क्रोध न करना।” इस प्रकार भरत और शत्रुघ्न को विदा किया। विदायी के समय भरत ने चरण पादुकायें लेकर श्री रामचन्द्रजी की परिक्रमा की फिर उन पादुकाओं को सर्वश्रेष्ठ हाथी के ऊपर स्थापित करके अयोध्या की ओर चल दिये। कवि ने इन भावों को इस प्रकार चित्रित किया है -

अयोध्या राज्य सारा दुर्खी और अनाथ है।
आप सिंहासन सम्भालो ज्ञुका मेरा माथ है॥
नहीं यह पांडी केवल मेरी आँखों के तारें हैं।
यह दोनों राज सिंहासन हैं जीवन के सहारे हैं॥
मेरे जीवन के ये दोनों सीता - राम यारे हैं।
डूबती के खिलैया हैं, अवधि तक ये किनारे हैं॥
अयोध्या पहुँचकर भरत खड़ाऊँ सिंहासन पर रखते हैं
और अपने आप नगर से बाहर तपस्वी वेश में रहकर राज्य व्यवस्था का संचालन करते हैं।

रामायण के विषय में कुछ मिथ्या धारणाएँ एवं उनका निराकरण

राम ईश्वर नहीं मर्यादा पुरुषोत्तम एवं महापुरुष थे। कुछ प्रक्षिप्त अंशों के अतिरिक्त सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण में कहीं पर भी राम को ईश्वर अथवा ईश्वर का अवतार नहीं बताया गया। महर्षि वाल्मीकि ने नारद से ईश्वर के विषय में नहीं अपितु किसी सर्वश्रेष्ठ मनुष्य के विषय में पूछते हुए कहा था कि हे महर्षि! इस समय संसार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, दृढप्रतिज्ञ, विद्वान्, आत्मवान् आदि गुणों से युक्त कौन मनुष्य है? इसको जानने में तुम्ही समर्थ हो, मैं उस व्यक्ति के विषय में सुनना चाहता हूँ।

**एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम्॥**

इससे स्पष्ट है कि महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में राम एक महापुरुष हैं न कि ईश्वर। जैसा कि इस पुस्तक में आगे ईश्वर

का स्वरूप बताया है वह गुण राम में नहीं घटते। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में ईश्वर के स्वरूप को बताते हुए लिखा है कि ईश्वर शरीर से रहित, वर्णों से रहित है, नस - नाड़ियों से रहित है और जन्म नहीं लेता।

इसी स्वरूप का विवेचन सभी वेदों, उपनिषदों और दर्शन - शास्त्रों में हुआ है। राम ने जन्म भी लिया है, उसका शरीर भी है, वह सर्वव्यापक नहीं हैं। इसलिए वे ईश्वर नहीं अपितु महापुरुष थे।

भगवान् शब्द भग + मतुप् प्रत्यय से मिलकर बनता है, जिसका अर्थ होता है - भग वाला; जैसे धन + मतुप् = धनवान् = धन वाला। भग के छः अर्थ होते हैं :-

- | | | |
|------------------|----------|-------------|
| 1. समस्त ऐश्वर्य | 2. धन | 3. यश |
| 4. श्री | 5. ज्ञान | 6. वैराग्य। |

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥
(विष्णु पुराण 6.5.74)

इन छः ऐश्वर्यों में से जिसके पास एक भी हो, वह भगवान् कहलाता है। राम के पास राज्य का ऐश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य कुछ न कुछ मात्रा में सभी थे, इसलिए उसको रामायण में अनेक स्थानों पर भगवान् कहा गया है। इसी प्रकार कृष्ण आदि दूसरे महापुरुषों को भी भगवान् कहा जाता है। राम स्वयं ईश्वर भक्ति करते थे, प्रतिदिन संध्या और यज्ञ करते थे। यदि वे स्वयं भगवान् होते तो फिर संध्या किसकी करते। रावण - वध के बाद जब लोकपालों ने उनकी प्रशंसा करते हुए अतिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग करके उनको लोकों का पालक, तीनों लोकों का निर्माता आदि विशेषणों से सम्बोधित किया तो उनको राम ने

निम्नलिखित उत्तर देते हुए कहा -

आत्मनं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्॥

(वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 117.11)

देवगण! मैं तो अपने को मनुष्य दशरथपुत्र राम ही समझता हूँ।

इसी प्रकार किष्किन्धा काण्ड में सुग्रीव और राम एक साथ बैठे हुए हैं। वाल्मीकि ने इस प्रसंग में राम को नर कहकर सम्बोधित किया है।

एवमेकान्तसम्पृक्तौ ततस्तौ नरवानरौ।

उभावन्योन्यसदृशं सुखं दुःखमभाषताम्॥

(वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड 7.24)

इस प्रकार एकान्त में एक - दूसरे के निकट बैठे हुए वे दोनों नर और वानर (श्री राम और सुग्रीव) ने परस्पर सुख एवं दुःख की बातें कहीं, जो एक - दूसरे के लिए अनुरूप थी।

जिस समय सीता को रावण की कैद से मुक्त कराकर राम के पास लाया गया तो राम कहने लगे -

या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा।

दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः॥

(वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 115.5)

जब तुम्हें आश्रम से रावण हरकर ले गया था, उस समय यह देवी - विपत्ति तुझ पर आ गई थी। उस पर मुझ मनुष्य ने विजय प्राप्त कर ली है।

इस प्रकार के सैंकड़ों उद्धरण रामायण में विद्यमान हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि राम मनुष्य थे। उन्होंने अपने जीवन में ऐसे उत्तम कार्य किये जिससे वे सबके समादरणीय

बन गये।

उन्होंने सभी शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन किया, इसलिए उनको मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। कवि काव्य लिखते समय अनेक अलंकारों का प्रयोग करता है। उन अलंकारों में एक अलंकार अतिशयोक्ति अलंकार भी है। किसी बात को बढ़ा - चढ़ाकर कहना अतिशयोक्ति अलंकार कहलाता है। राम, कृष्ण आदि महापुरुषों के जीवन - चरित्र लिखते हुए कवियों ने अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है, इसलिए विज्ञ पाठकों को काव्य पढ़ते समय विचार से काम लेना चाहिए।

श्री हनुमान जी वानर नहीं मनुष्य थे

बहुत से लोग हनुमान को वानर मानते हैं, लेकिन वे वानर नहीं मनुष्य थे। बड़े नीतिज्ञ, बलवान्, निर्भीक, पराक्रमी और सभी शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् थे। उनके विषय में रामायण में उल्लेख आया है कि जब राम और लक्ष्मण वन में धूम रहे थे तो सुग्रीव को आशंका हुई कि ये कहीं शत्रु के भेजे हुए गुप्तचर तो नहीं। यह पता लगाने के लिए उन्होंने हनुमान को भेजा। हनुमान ने उनके पास पहुंचकर अपना परिचय दिया और उनके वन में आने का प्रयोजन पूछा। हनुमान द्वारा वार्तालाप का यह प्रसंग बहुत ही उत्तम और शुद्ध भाषा से युक्त था। हनुमान की वाक्पटुता को देखकर राम ने लक्ष्मण से कहा कि -

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेददध्यारिणः।
नासामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥

अर्थात् - जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता।

नूनं व्याकरणं कुत्सन्मनेन बहुधा श्रुतम्।

बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

(वाल्मीकि रामायण किञ्चिन्धाकाण्ड 3.28-29)

निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत - सी बातें बोल जाने पर भी इनके मुँह से कोई अशुद्धि नहीं निकली।

वानर में इस प्रकार की योग्यता नहीं होती कि वह वेद - शास्त्र का अध्ययन कर सके। इससे स्पष्ट है कि श्री हनुमान जी मनुष्य ही थे। इतिहासकारों ने वानर जाति के विषय में काफी अन्वेषण किया है, जिसका भाव निम्नलिखित है - प्रारम्भ में मनुष्य के समुदाय अथवा जातियाँ किसी जीव - जन्तु अथवा वृक्ष, लता, पर्वत आदि नामों से अपना परिचय दिया करती थी। जिससे वे अपना परिचय देते थे, उस वस्तु का चिन्ह भी वे धारण करते थे। आज भी अनेक स्थानों पर वानर और भालुओं के वंशधर लोग भारत में मिलते हैं। बंगाल के कवि मातृगुप्त अपने आपको हनुमान का वंशज कहते थे और पूँछ लगाते थे। (दृष्टव्य बंगाली रामायण पृ० 52, दिनेश चन्द्र सेन) स्वाधीनता संग्राम के अमर सेनानी सावरकर जी ने अण्डमान कारावास के संस्मरण में लिखा है कि - अण्डमान द्वीप में एक ऐसी आदिवासी जाति है जो पूँछ लगाती है।

इतिहासकारों के इस वर्णन से यह सिद्ध होता है कि वानर का चिन्ह लगाने वाले लोग अपने आप को वानर नाम से पुकारते हैं और आभूषण रूप में वानरों के समान ही पूँछ धारण करते हैं। रामायण में सुग्रीव, बालि, अंगद आदि वानर समुदायों के लोगों की पूँछ का वर्णन नहीं हुआ और न ही किसी वानर जाति की स्त्री

की पूँछ का वर्णन मिलता है। हनुमान की पूँछ का वर्णन भी लंका दहन के अवसर पर ही विशेष रूप से हुआ है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष अवसरों पर ही इस पूँछ रूपी आभूषण को वानर जाति के सदस्य धारण करते थे।

रामायण के अनमोल वचन

राम द्वारा रावण का वध किये जाने पर उसके मृत शरीर को रणभूमि में पड़ा देखकर विभीषण विलाप करने लगा। तब राम ने विभीषण को समझाते हुए कहा कि युद्ध भूमि में पराक्रम के साथ वीरगति को प्राप्त हुए वीरों के प्रति शोक नहीं करना चाहिए। राम ने विभीषण को अन्येष्टि संस्कार करने का आदेश देते हुए कहा -

**मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥**
(वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 109.25)

हे विभीषण! वैर मरने तक ही रहता है। मरने के बाद उसका अन्त हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका है। अतः इस समय जैसे यह तुम्हारा भाई है वैसे ही मेरा भी है; इसलिए इसका दाह संस्कार करो।

यह है राम का उदात्त भावना का उदाहरण

पाप – पुण्य

रामायण में पाप और पुण्य के विषय में कुछ सूक्ष्मियां मिलती हैं, यथा -

अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः।
भर्तः पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः॥

(वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 111.25)

इसमें कोई सदेह नहीं कि समय आने पर कर्ता को उसके पाप – कर्म का फल अवश्य मिलता है।

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते

(वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 15.25)

जो जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है।

**पापस्य हि फलं दुःखं तद् भोक्तव्यमिहात्मना।
तस्मादात्मापद्धातार्थं मूढः पापं करिष्यति॥**

(वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 15.24)

पाप का फल केवल दुःख है और उसे स्वयं ही यहाँ भोगना पड़ता है; इसलिए जो मूढ़ पाप करेगा, वह मानों स्वयं ही अपना वध कर लेगा।

रावण के शव को देखकर उसकी पत्नी मन्दोदरी का निम्नलिखित कथन शास्त्र के अनुकूल है -

**शुभकृच्छुभमाज्ञोति पापकृत् पापमश्नुते।
विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम्॥**

(वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 111.26)

शुभ कर्म करने वाले को उत्तम फल की प्राप्ति होती है और पापी को पाप का फल - दुःख भोगना पड़ता है। विभीषण को अपने शुभ कर्मों के कारण ही सुख प्राप्त हुआ है और आपको ऐसा दुःख भोगना पड़ा है।

**ऋद्धिं रूपं बलं पुत्रान् वित्तं शूरत्वमेव च।
प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः॥**
(वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 15.26)

संसार के पुरुषों को समृद्धि, सुन्दर रूप, बल, वैभव, वीरता तथा पुत्र आदि की प्राप्ति पुण्यकर्मों के अनुष्ठान से ही होती है।

प्रकीर्ण सूक्तियाँ :-

**न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्धं इवोरगः॥**
(वाल्मीकि रामायण किञ्चिन्धाकाण्ड 64.9)

कभी भी मन में शोक नहीं करना चाहिए। शोक में बहुत बड़ा दोष है। यह मनुष्य का उसी प्रकार नाश कर देता है जैसे क्रोध में भरा हुआ सांप अपने पास आये हुए बालक को डस लेता है।

**ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां न विद्यते सुखम्।
तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि॥**
(वाल्मीकि रामायण किञ्चिन्धाकाण्ड 7.12)

जो हर समय शोक में डूबे रहते हैं उन्हें सुख नहीं मिलता और उनका तेज भी क्षीण हो जाता है।

**आकारमाछाद्यमानो पि न शक्यो विनिगूहितुम्।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम्॥**
(वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 17.63)

कोई अपने आकार को कितना ही क्यों न छिपाये उसके भीतर का भाव कभी छिप नहीं सकता। बाहर का आकार पुरुष

के आंतरिक भाव को बलात् प्रकट कर देता है।

इसी विषय में एक संस्कृत की सूक्ति मिलती है -

**आकारैरिद्धिगतैर्गत्या चेष्ट्या भाषणेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यते न्तर्गतं मनः॥**

मनुष्य के आकार से, इशारों से, चाल से, चेष्टा से, बोलने से, नेत्र और मुँह के हाव - भाव से मन की बात प्रकट हो जाती है।

**गोद्धने चैव सुरापे च चौरै भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सदिभः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥**
(वाल्मीकि रामायण किञ्चिन्धाकाण्ड 34.12)

गो हत्यारे, शराबी, चौर और व्रत - भंग करने वाले पुरुष के लिए सत्पुरुषों ने प्रायश्चित्त का विधान किया है; किन्तु कृतघ्न (किसी के किये उपकार को न मानने वाले) के उद्धार का कोई उपाय नहीं है।

**उत्साहो बलवानार्यं नास्त्युत्साहात् परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥**
**उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु।
उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्याम जानकीम्॥**

(वाल्मीकि रामायण किञ्चिन्धाकाण्ड 1.121-122)

(सीता के वियोग में विलाप करते हुए राम के प्रति लक्षण का कथन) हे आर्य (राम)! उत्साह बड़ा बलवान् है। उत्साह से बढ़कर और कोई बल नहीं है। उत्साह सम्पन्न मनुष्य के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जिनके हृदय में उत्साह होता है वे पुरुष कठिन से कठिन कार्य आ पड़ने पर भी हिम्मत नहीं हारते। हम लोग केवल उत्साह का आश्रय लेकर ही सीता को प्राप्त कर लेंगे।

योगेश्वर श्री कृष्ण

भारतीय पुनर्जागरण के सूत्रधार, स्वाधीनता के प्रथम विचार देने वाले, ऋषि दयानन्द ने योगेश्वर कृष्ण के सम्बन्ध में लिखा है - “देरवो! श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अति उत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अर्धर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।

(सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास पृ० - 320)

श्री कृष्ण जी महान् योगी, कुशल राजनीतिज्ञ, कूटनीति के चतुर खिलाड़ी, पराक्रमशाली, ईश्वरभक्त, सहिष्णु, चरित्र के धनी, सच्चे मित्र, निर्लोभी, साहसी, वेदों के विद्वान् और वैदिक संस्कृति के रक्षक थे। यहाँ पर महाभारत में वर्णित योगेश्वर श्री कृष्ण के चरित्र पर प्रकाश डाला जा रहा है। पुराणों में कृष्ण के चरित्र को विकृत रूप में प्रस्तुत किया है। जिसके अनुसार उनको दूध, दही, मक्खवन की चोरी करने वाला, चरित्रहीन्, रसिक, कामी आदि कुकर्म करने वाला बताया गया है। यह कृष्ण जैसे महापुरुष के लिए अपमान की बात है।

निम्नलिखित विवेचन से पाठकगण स्वयं निर्णय करें कि जिसके मुख से गीता का ज्ञान निकला, एक पुत्र को प्राप्त करने के लिए जिसने अपनी पत्नी रुक्मिणी के साथ बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। कंस, जरासन्ध, शिशुपाल जैसे अत्याचारियों का संहार करने के बाद भी उनके राज्यों को उनके सम्बन्धियों को ही वापिस कर दिया। ऐसा महान् तपस्वी, महान् योगी क्या परस्त्रियों के साथ रास लीला कर सकता है? कदापि

नहीं। इस विषय में ऋषि दयानन्द ने बहुत ही उपयुक्त लिखा है कि “.....और इस भागवत्वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खवन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्री कृष्ण जी में लगाये हैं। इसको पढ़ - पढ़ा, सुन - सुना के अन्य मतवाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत् न होता तो श्री कृष्ण जी सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?³¹

(सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास पृ० - 320)

जन्म

इनका जन्म यदुवंश में हुआ था। इनके पिता का नाम वसुदेव तथा माता का नाम देवकी था। इनके जन्म को 5000 से अधिक वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इनके जन्म और बाल्यकाल के विषय में महाभारत में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। पुराणों में इनके बाल्यकाल और जन्म की घटनाओं को अलौकिक बनाकर प्रस्तुत किया है और वह अविश्वसनीय घटनाओं से भरा पड़ा है। इनका विद्याध्ययन गुरुकुल में हुआ। जहाँ इन्होंने चारों वेद, दर्शन शास्त्र के साथ - साथ धनुर्वेद और राजनीति शास्त्र का भी अध्ययन किया।

31. पुराणों में योगेश्वर श्री कृष्ण जी पर निम्नलिखित स्थलों पर व्यभिचार आदि के दोष लगाये हैं - विष्णु पुराण अंश 5 अध्याय 13, श्री मद्भागवत् महापुराण (स्कन्ध 10, अध्याय 29 श्लोक 45 - 46) स्कन्ध 10, अध्याय 33 श्लोक 14, 17 - 21, शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय 10, ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्ण जन्मरवण अध्याय - 3 श्लोक 58 - 62, अध्याय - 15, अध्याय - 72 तथा कृष्णजन्म रवण उत्तरार्थ अध्याय 115 श्लोक 61 - 62 आदि। ये वर्णन इतने गन्दे और अश्लील हैं कि लज्जा भी लजा जाये। इन स्थलों पर बार - बार भगवान् योगेश्वर श्री कृष्ण को कामी, लम्पट बताया गया है।

इनके गुरु सान्दीपनि थे। छान्दोग्य उपनिषद् ३.१७.६ में देवकी पुत्र कृष्ण का वर्णन है। जिसने (अंगिरस के पुत्र) घोर नामक ऋषि से शिक्षा ली थी, परन्तु महाभारत में इसका उल्लेख नहीं है। विद्याध्ययन काल में ही ये प्रखर बुद्धि और पराक्रमी थे। एक बार एक बैल जिसका नाम अरिष्टि था, पागल हो गया, सब उसके उत्पात से डरकर इधर - उधर भागने लगे, तब कृष्ण ने ही उसका वध किया था। इसी प्रकार एक जंगली घोड़ा जिसका नाम केशी था, वह भी आतंक का पर्याय बन गया था, जो भी उस जंगल में जाता उन पर आक्रमण करता था। उसका वध भी श्री कृष्ण ने किया था।

विद्याध्ययन काल में ही श्री कृष्ण ने अपने मामा कंस के अत्याचारों को देखकर उसका वध करने की ठान ली थी। इसकी सूचना कंस को भी मिल गई थी। वह गुप्तचरों के माध्यम से ही कृष्ण को मरवाना चाहता था, परन्तु पराक्रमी कृष्ण के सामने उसकी एक न चली। जो भी दूत उसने भेजे उनको कृष्ण ने सदा के लिए गहरी नींद में सुला दिया। विवश होकर कंस ने छलपूर्वक कृष्ण को मारने की योजना बनाई तथा धनुष यज्ञ का आयोजन किया। कृष्ण और बलराम को उस यज्ञ में बुलाया गया। वहाँ पहुँचकर कृष्ण ने धनुष को तोड़ दिया, उसी अवसर पर कंस ने एक दंगल का आयोजन किया हुआ था। जब कृष्ण दंगल में जाने लगे तो उनके ऊपर पागल हाथी छोड़ दिया। कृष्ण ने उस हाथी को भी मार दिया। कंस के दो पाले हुए पहलवान थे। एक का नाम था - चाणूर और दूसरे का नाम था। मुष्टिक। इन दोनों को कंस ने निर्देश दिया था कि कुश्ती के समय दोनों भाइयों को मौत की नीन्द सुला देना। कृष्ण और बलराम दोनों अखाड़े में गये। चाणूर की कुश्ती कृष्ण के साथ और बलराम की कुश्ती मुष्टिक के साथ हुई। दोनों भाइयों ने इन दोनों पहलवानों के कुटिल भावों को ताढ़कर उनको भी मौत के

घाट उतार दिया। इस पर कंस बड़ा क्रोधित हुआ, तब भगवान् कृष्ण ने छलांग लगाकर कंस के केश पकड़ लिए और भूमि पर पटक कर उसको प्राणान्त कर दिया।

मथुरावासी जो कंस के अत्याचारों से पीड़ित थे, भगवान् कृष्ण की जय - जयकार करने लगे और प्रार्थना करने लगे कि आप ही राज्य सिहांसन संभालें, परन्तु उन्होंने इस आग्रह को अस्वीकार करके कंस की जेल में बंद कंस के पिता और अपने नाना उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाया। यह उनका महान् त्याग था। इस प्रकार उन्होंने नष्ट हुए यदुवंशियों के गणतंत्र की पुनः स्थापना की।

कंस की दो स्त्रियाँ थीं - "अस्ति" और "प्राप्ति"। इनका पिता मगध का प्रतापी सम्राट् जरासंध था। यह बहुत ही पराक्रमी और अत्याचारी था। कंस की पत्नियों ने अपने पिता के पास जाने के लिए श्री कृष्ण जी से प्रार्थना की, तब कृष्ण ने उनको सम्मानपूर्वक जरासंध के पास भिजवा दिया। उनको रोता - बिलखता देखकर जरासंध आपे से बाहर हो गया और अपनी विशाल सेना के साथ मथुरा पर आक्रमण कर दिया।

श्री कृष्ण के नेतृत्व में यादव सेना ने उन्हें मारकर भगा दिया। वह तैयारी के साथ फिर आक्रमण करने आया और फिर उसको मुँह की खानी पड़ी। इस प्रकार जरासंध ने मथुरा पर 17 बार आक्रमण किये और हर बार पराजित होकर वापस गया। अठारहवीं बार जरासंध ने एक विदेशी राजा कालयवन को अपने साथ मिलाया और आकर मथुरा को घेर लिया। श्री कृष्ण ने इस अवसर पर नीति का सहारा लिया और युद्ध की वेष - भूषा पहनकर अस्त्र - शस्त्र लेकर कालयवन की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करता हुआ मथुरा से बाहर निकल गया। कालयवन भी अकेला उसके पीछे दौड़

पड़ा। श्री कृष्ण एक गुफा में चले गये। वहाँ एक पराक्रमी वीरपुरुष विश्राम कर रहा था। कृष्ण ने अपने युद्ध की पोशाक उसके ऊपर डाल दी और स्वयं छिपकर खड़े हो गये। जब कालयवन अन्दर आया तो उसने सोते हुए पुरुष को कृष्ण समझ कर लात मारी। वह पुरुष उठा, वहाँ दोनों का युद्ध हुआ, जिसमें कालयवन मारा गया। श्री कृष्ण पुनः मथुरा आये और शत्रु - सेना की प्रबलता को देरकर उन्होंने मथुरा छोड़ना ही उचित समझा। बलराम और श्री कृष्ण दोनों भाई मथुरा से निकल भागे तथा समुद्र के तट पर द्वारिकापुरी पहुँच गये। वहाँ उन्होंने अपनी सैन्य शक्ति बढ़ानी शुरू की।

श्री कृष्ण एवं रुक्मिणी का विवाह

यहाँ रहते हुए विदर्भ देश के राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी से इनका विवाह हुआ। विवाह के पश्चात् पुत्र - प्राप्ति के लिये इन दोनों ने बारह वर्ष तक हिमालय में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तपस्या की। तब इन्होंने एक पुत्र रत्न को उत्पन्न किया, जिसका नाम प्रद्युम्न रखा। व्यास ने स्वयं उनके मुख से एक प्रसंग में यह बात कहलवाई है। वह प्रसंग निम्नलिखित है -

महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने से पहले एक दिन अश्वत्थामा भगवान् कृष्ण के पास गये और उनसे सुदर्शन चक्र मांगा। तब श्री कृष्ण बोले -

**ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
हिमवत्पाश्वर्वमासथाय यो मया तपसार्जितः॥**

समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥

(महाभारत सौन्तिकपर्व 12/30-31)

अर्थात् मैंने हिमालय की गुफाओं में रहकर बारह वर्ष तक अपनी पत्नी रुक्मिणी के साथ बड़ी तपस्या के द्वारा प्रद्युम्न नामक प्रिय पुत्र को प्राप्त किया है। मानो उसके रूप में तेजस्वी सनत् कुमार ने ही साक्षात् जन्म लिया हो। मेरा यह दिव्य चक्र तो कभी उसने भी नहीं मांगा अर्थात् मैं तुम्हें यह कैसे दे दूँ। प्रद्युम्न सर्वथा कृष्ण के समान ही था। इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्ण कितने बड़े सदाचारी तथा योगीपुरुष थे। क्या ऐसा तपस्वी, योगी, सदाचारी, गोपियों के पीछे भागता फिरेगा? अतः बुद्धिमान् जनों को भगवान् श्री कृष्ण के चरित्र को जानने के लिए महाभारत को ही पढ़ना चाहिए। भागवत् आदि पुराणों को नहीं। भगवान् श्री कृष्ण जैसे धर्मात्मा पुरुषों की निन्दा करना और सुनना भी पाप का हेतु होता है।³²

(32) श्रीमद भागवत् महापुराण दसवें स्कन्ध, अध्याय 29 के 45-46 ये दो श्लोक अर्थ सहित पाठकों के ज्ञानार्थ यहाँ लिख रहा हूँ -

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्।
रेमे तत्त्वरलानन्दकुमुदामोदवायुना॥

ब्रह्मप्रसार परिरम्भकरालकोरु नीवीस्तनालम्भनर्मनर्वाग्रपातैः
क्षवेल्यावलोकहसितैर्वजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाज्यकार॥

अर्थात् - श्री कृष्ण ने यमुना के कपूर के समान चमकीले बालू के तट पर गोपियों के साथ प्रवेश किया। वह स्थान जलतरंगों से शीतल व कुमुदिनी की सुगंध से सुवासित था। वहाँ कृष्ण ने गोपियों (ग्वालिनों) के साथ रमण (भोग किया), बाहें फैलाना, आलिंगन करना, गोपियों के हाथ दबाना, उनकी चोटी पकड़ना, जांधों पर हाथ फेरना, लहरों का नाड़ा खींचना, स्तन पकड़ना, मजाक करना, नारूनों से उनके अंगों को नोच - नोच कर जरबी करना, विनोदपूर्ण चितवन से देखना और मुस्कुराना तथा इन क्रियाओं के द्वारा नवयोवना गोपियों

कृष्ण एवं पाण्डवों का सम्बन्ध

पाण्डवों की माता कुन्ती भगवान् श्री कृष्ण की बुआ (फूफी) थी। जिस समय द्रौपदी का स्वयंवर हुआ वहाँ पर ब्राह्मण वेश में अर्जुन ने मछली को बींध दिया तो क्षत्रिय राजाओं में खलबली मच गई कि हमारे रहते हुए ये कंगाल ब्राह्मण द्रौपदी को कैसे ले जा सकते हैं? वे सब युद्ध के लिए तैयार हो गये। युद्ध के लिए पाण्डव भी तैयार थे। कर्ण सर्वप्रथम अर्जुन से युद्ध के लिए आगे आया तो अर्जुन ने उसे परास्त कर दिया। श्री कृष्ण भी वहाँ उपस्थित थे। उनको यह समझते देर न लगी की पाण्डव ही ब्राह्मण वेश में आये हुए हैं। कृष्ण आगे बढ़े और उस कलह को शांत कराया। युधिष्ठिर ने जब राजसूय यज्ञ का विचार किया तो श्री कृष्ण ने उसको समझाया कि जरासन्ध को परास्त किये बिना राजसूय यज्ञ का कोई अर्थ नहीं है। श्री कृष्ण से विचार - विमर्श के

में कामदेव को खूब जाग्रत करके उनके साथ कृष्ण ने रमण (विषय भोग) किया। श्रीमद्भागवत् पुराण के दसवें स्कन्ध के 33वें अध्याय का 14वां श्लोक भी देरवें -

नृत्यन्ती गायती काचित् कूजन्नूपुरमेवला।
पाश्वर्स्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताधात् स्तनयोः शिवम्॥

अर्थात् - कोई गोपी नूपुर और करधनी के धुँधरूओं को झनकारती हुई नाच और गा रही थी। वह जब बहुत थक गयी, तब उसने अपने बगल में ही खड़े श्यामसुन्दर के शीतल करकमल को अपने दोनों स्तनों पर रख लिया। गोपाल सहस्र नाम ग्रंथ के 137वें श्लोक में लिखा है -

“गोपाल कामिनी जारश्चोर जार शिरवामणि”

अर्थात्! कृष्ण चोर और व्यभीचारियों में शिरोमणि थे। विष्णु पुराण अंश 5, अध्याय 13, श्लोक 58 में उल्लेख है -

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा।
कृष्णं गोपाङ्गानां रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः॥

बाद द्वन्द्व युद्ध करके जरासन्ध को मारने की योजना बनाई। भीम, अर्जुन और श्री कृष्ण मगध में पहुँच गये और कृष्ण की योजनानुसार द्वन्द्व युद्ध का स्थान और समय निश्चित हुआ। जरासन्ध और भीम का युद्ध प्रारम्भ हुआ जो 13 दिनों तक चलता रहा। 14वें दिन जरासन्ध थक गया, कृष्ण का इशारा पाकर भीम ने जरासन्ध को टांगों से पकड़कर बीच में से चीर दिया। जरासन्ध की मृत्यु के बाद श्री कृष्ण ने उसके पुत्र सहदेव को ही राज्यसिंहांसन पर अभिषिक्त किया। जरासन्ध ने 86 राजाओं को बंदी बनाया हुआ था। श्री कृष्ण ने उन सब को मुक्त कराया और उनको युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आने का निमन्त्रण दिया, जिसको उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। राजसूय यज्ञ के अवसर पर योग्यता के अनुसार सभी को विभिन्न कार्य सौंपे गये। कृष्ण ने स्वयं आगे बढ़कर प्रार्थना की कि मैं आये हुये विद्वानों के चरणों की सेवा करूँगा। यह है - **कृष्ण की नम्रता। राजसूय यज्ञ के**

अर्थात् - वे गोपियां अपने पति, पिता और भाइयों के रोकने पर भी नहीं रुकती थी। रोज रात्रि को वे रति ‘‘विषय भोग’’ की इच्छा रखने वाली, कृष्ण के साथ रमण ‘‘भोग’’ किया करती थी।

ब्रह्मवैर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय 3, श्लोक 58 से 62 में राधा कृष्ण की भर्त्सना (निन्दा) करती हुई कह रही है -

हे कृष्ण बृजकांत! गच्छ मत्पुरतो हरे।
कथं दुनोषिमां लोलं रति चोरे अति लम्पट ॥
मयाज्ञातोऽसि भद्र ते गच्छ - 2 ममाश्रमात्।
शाश्वते मनुष्याणां च व्यवहारस्य लम्पट।
लभतां मानुषी यौनि गौलोकाद् वज भारतम्॥
हे सुशीले, हे शशिकले, हे पद्मावति माधवी।
निवर्य ताच्चर्थूर्तो च किमस्यात्र प्रयोजनम्॥

अर्थात् - हे कृष्ण ब्रज के प्यारे, तू मेरे सामने से चला जा, तू मुझे क्यों दुःख देता है - हे चंचल, हे अति लम्पट कामचोर मैंने तुझे जान लिया है। तू मेरे घर से

अवसर पर युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि इन सब आये हुए क्षत्रियों और विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ कौन है, जिसको अर्घ्य प्रदान किया जाये। भीष्म ने कहा -

वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हिं को न्योस्ति विशिष्टः केशवादृते॥
दानं दाक्षयं श्रुतं शौर्यं ही कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा।
सन्नतिः श्रीर्घृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते॥

(महाभारत सभापर्व 38.19 - 20)

अर्थात् - वेद और वेदांग को जानने वालों में तथा बलशालियों में कृष्ण के अतिरिक्त कोई और पुरुष मानव समाज में श्रेष्ठ नहीं। श्री कृष्ण में दान, दक्षता, शास्त्रों का ज्ञान, शौर्य लज्जा, यश, श्रेष्ठ बुद्धि, विनयशीलता, श्री, धैर्य, संतोष और पुष्टि अर्थात् बल सबसे अधिक है। जैसे सूर्य सभी नक्षत्रों में सर्वाधिक देवीयमान् है उसी प्रकार सभी क्षत्रियों में श्री कृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं। इसके बाद श्री कृष्ण को अर्घ्य प्रदान किया

चला जा। तू मनुष्यों की भाँति मैथुन करने में लम्पट है, तुझे मनुष्यों की योनि मिले, तू गौलोक से भारत में चला जा। हे सुशीले, हे शशिकले, हे पद्मावती, हे माधवो! यह कृष्ण धूर्त है, इसे निकाल कर बाहर करो, इसका यहाँ कोई काम नहीं।

राधा कौन थी?

पौराणिक भाईं राधा और कृष्ण का सम्बन्ध अनेक रूपों में स्थापित करते हैं और बहुत से लोग “राधे-राधे”, “राधे-कृष्ण” आदि अभिवादन का भी प्रयोग करते हैं। कुछ राधा को कृष्ण की शक्ति मानते हैं तो कुछ प्रेमिका। कुछ कहते हैं कि यह कृष्ण की आध्यात्मिक शक्ति थी। आओ देखें पुराणों में क्या उल्लेख है - ब्रह्मवैर्वत पुराण प्रकृति खण्ड अध्याय 49, श्लोक 35,37,40 के अनुसार यशोदा के भाई रायण से राधा का विवाह हुआ था। कृष्ण का पालन-पोषण यशोदा ने किया था। इस दृष्टि से राधा कृष्ण की मामी थी।

वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह।
सार्थ रायणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः॥

गया। कृष्ण का यह सम्मान देखकर शिशुपाल इसे सहन नहीं कर सका और कृष्ण को अपशब्द कहने लगा। युधिष्ठिर ने उसे समझाने का प्रयास किया, लेकिन वह न माना तो कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया। राजसूय उत्सव में युधिष्ठिर का सम्मान दुर्योधन से न देखा गया और अपने मामा शकुनि से षड्यन्त्र करके उनको द्यूतक्रीड़ा में परास्त कर दिया।

द्रौपदी को सभा में बुलाकर अपमान किया गया। दुशासन ने उसका वस्त्र खींचा। जिस समय यह सब हो रहा था। श्री कृष्ण उस समय शाल्व से युद्ध करने गये हुए थे। वनवास के बाद श्री कृष्ण का पाण्डवों से मिलन द्वैतवन में हुआ तो श्री कृष्ण ने कहा कि यदि मैं उस समय द्वारिका में होता तो बिना बुलाये ही जुए के समय तुम्हारे पास पहुँच जाता और युधिष्ठिर को जुआ न खेलने देता। इससे यह स्पष्ट है कि द्रौपदी के चीर बढ़ाने की कथा प्रक्षिप्त है।

कृष्णमातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः।
गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धात् कृष्णमातुलः॥

अर्थात् - राधा वृषभानु की कन्या थी। उसने राधा का विवाह कृष्ण की माता यशोदा के भाई रायण से कर दिया। यह रायण गोलोक में तो कृष्ण का अंश था अर्थात् पुत्र था, परन्तु सम्बन्ध की दृष्टि से उसका मामा था।

ब्रह्मवैर्वत पुराण कल्याण मासिक का विशेषांक प्रकृति खण्ड पृ० 211 के अनुसार, रायण श्री कृष्ण का अंशभूत गोप था। इस दृष्टि से राधा कृष्ण की पुत्र - वधू थी। ब्रह्मवैर्वतपुराण प्रकृति खण्ड - 2 अध्याय 5 श्लोक 25 से 26 के अनुसार, राधा कृष्ण की पुत्री थी तथा इसी पुराण के प्रकृति खण्ड अध्याय 48 श्लोक 29 के अनुसार, राधा कृष्ण की बहन थी। विद्वान् पाठक गण स्वयं विचार करें कि इन पुराणों में कितना विरोधाभास है, इसीलिए ऐसे कपोल कल्पित साहित्य के अध्ययन में समय बर्बाद न करके वेद, दर्शन, उपनिषद्, गीता आदि सत्य शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए।

श्री कृष्ण का दौत्यकर्म

पाण्डवों के वनवास की अवधि पूर्ण होने के बाद श्री कृष्ण ने यह प्रयास किया कि युद्ध न हो। वे पाण्डवों की तरफ से दूत बनकर दुर्योधन के पास गये। विदुर के पास रुके, उनके यहाँ भोजन किया, फिर दुर्योधन के महल में गये। दुर्योधन ने जब उनके भोजन के लिए पूछा तो श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया -

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपदभोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापदगता वयम्॥

(महाभारत उद्योगपर्व 91.25)

अर्थात् - किसी के घर भोजन या तो प्रेम में खाया जाता है या फिर विपत्ति के समय। हे राजन! तुम्हें प्रेम तो है नहीं और विपत्ति में हम नहीं। दूसरे दिन श्री कृष्ण राज्यसभा में गये, वहाँ पर बहुत ही सारगर्भित भाषण दिया और संधि प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा कि हे दुर्योधन! पाण्डव तुम्हें युवराज बनायेगे तथा तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र को महाराज स्वीकार कर लेंगे। अपने घर में आती हुई इस श्री का अपमान मत करो। पाण्डवों को भी आधा राज्य दे दो। इसके बाद भीष्म, विदुर, द्रोण आदि ने दुर्योधन को समझाया, परन्तु वह नहीं माना और खड़ा होकर कहने लगा -

यावद्द्वि तीक्ष्णया सूच्या विद्येदग्रेण केशव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति।

(महाभारत उद्योगपर्व 127.25)

अर्थात् - हे कृष्ण! मैं पाण्डवों को उतना स्थान भी देने को तैयार नहीं हूँ, जिस पर सूर्झ की अगली नोक टिकती है। इस पर कृष्ण ने बड़े कठोर शब्दों में दुर्योधन को भयंकर विनाश की

चेतावनी दी। दुर्योधन ने श्री कृष्ण को कैद करवाना चाहा, परन्तु श्री कृष्ण के पराक्रम के सामने उसकी एक न चली और वे सभा से उठकर चले गये।

गीता के अमर गायक भगवान् श्री कृष्ण

जब श्री कृष्ण के प्रयत्न करने पर भी संधि का प्रयास विफल हो गया। तब युद्ध के अतिरिक्त कोई उपाय शेष न रहा। युद्ध की घोषणा के बाद दोनों ओर सेनायें खड़ी हो गईं। श्री कृष्ण अर्जुन के सारथी बने। अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा कि मेरे रथ को ऐसे स्थान पर ले चलो जहाँ से मैं देख सकूँ कि मुझे किनसे युद्ध करना है? श्री कृष्ण उसके रथ को उपयुक्त स्थान पर ले गये। अर्जुन ने देखा युद्ध के मैदान में पितामह भीष्म खड़े हैं, जिन्होंने मुझे गोदी में खिलाया है, बन्धु-बन्धव, ताऊ, मामा, गुरु और आचार्य खड़े हैं। इन सब को देखकर उसकी बुद्धि चकरा गयी, शरीर कांपने लगा और वह कृष्ण से बोला कि - मेरा मुख सुख रहा है, शरीर कांप रहा है, हाथ से धनुष छूट रहा है, अपने भाई-बन्धुओं को मारकर मुझे यह राज्य नहीं चाहिए। यह कहकर गाड़िव रखकर वह बैठ गया। इस अवसर पर भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाने के लिए जो उपदेश दिया। वही आज संसार में गीता के नाम से जाना जाता है।

श्री कृष्ण जी जानते थे कि क्षत्रिय का धर्म अन्यायकारी को समाप्त करना है, जो युद्ध के बिना नहीं हो सकता। युद्ध ही एक मात्र क्षत्रिय का धर्म है। इसकी बुद्धि में भ्रम पैदा हो गया। अर्जुन जिस वैराग्य की बात कर रहा है, वह वैराग्य है ही नहीं। श्री कृष्ण ने अर्जुन को झकझोरते हुए कहा -

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यं जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

(गीता 2.2)

अर्थात् - हे अर्जुन! युद्ध के अवसर पर तुम किस भ्रम में पड़ गये हो। तुम्हारा यह भ्रम अनार्यों का कर्म है। इससे तुम्हारा स्वर्ग और कीर्ति दोनों नष्ट हो जाएंगे।

क्लैव्यं मा स्म गमः नैतत्त्वयुपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

(गीता 2.3)

अर्थात् हे अर्जुन! यह नपुंसकता का व्यवहार करना तेरे लिए ठीक नहीं है, इसलिए तू हृदय की इस दुर्बलता को छोड़कर युद्ध करने के लिए खड़ा हो। जब अर्जुन ने यह कहा कि मैं अपने बन्धु - बान्धवों का वध कैसे करूँ? तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया है, वह वेदों, उपनिषदों और दर्शन शास्त्र का सार है। इस उपदेश को सुनकर अर्जुन युद्ध के लिए खड़ा हो गया। इस उपदेश को गीता के नाम से जाना जाता है।

महाभारत युद्ध में कृष्ण की कूटनीति

महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने पर सर्वप्रथम भीष्म पितामह ने कौरव सेना का नेतृत्व किया। वे 9 दिन तक मैदान में डटे रहे। अर्जुन ने विचार किया कि भीष्म के जीते जी कौरवों को परास्त नहीं किया जा सकता। वे स्वयं रात्रि को भीष्म जी की शरण में गये और उन्हीं से उनकी मृत्यु का रहस्य जानना चाहा। भीष्म जी ने बताया कि मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं किसी स्त्री अथवा स्त्री रूपधारी किसी नपुंसक पर हथियार नहीं चलाऊँगा। अगले ही दिन श्री कृष्ण ने शिखण्डी को आगे करके भीष्म को अर्जुन से धराशाही करा दिया। जयद्रथ वध

के समय भी कृष्ण ने ही सूर्य को आच्छादित करने वाले किसी योग का प्रयोग करके अर्जुन को विजय दिलाई थी।

कर्ण वध के अवसर पर भी इसी कूटनीति का परिचय मिलता है। युद्ध के मैदान में कर्ण के रथ का पहिया भूमि में धंस गया। कर्ण उसको निकालने के लिए अपने हथियार रथ पर रखकर नीचे उत्तर गया। उसी समय कृष्ण ने अर्जुन से कहा यही अवसर है कर्ण को धराशाही करने का। अर्जुन के तीर चढ़ाते हुए कर्ण बोला - निहत्थे पर वार करना धर्म नहीं है। श्री कृष्ण ने कर्ण को उत्तर दिया कि भरी हुई राज्यसभा में द्रौपदी का अपमान करना कौन सा धर्म था? और जब तुम सब महारथियों ने अकेले अभिमन्यु को घेर कर मार डाला था। उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ था? यह कहकर उन्होंने अर्जुन को आदेश दिया कि तुरंत इसका वध कर दो। अर्जुन ने उनके आदेश का पालन किया।

इस प्रकार यदि देखा जाये तो महाभारत युद्ध में पाण्डवों को जो विजय मिली उसका श्रेय कृष्ण को ही जाता है। यह है योगेश्वर श्री कृष्ण जी का उदात्त चरित्र। जिसने सम्पूर्ण राष्ट्र से आन्तरिक और अत्याचारी शासकों को समाप्त करके उनके कुशासन से जनता को मुक्ति दिलाई और सुशासन की स्थापना के लिए उन्हीं मारे गये राजाओं के कुल से सुयोग्य व्यक्ति को चुनकर राजा बनाया। सम्पूर्ण राष्ट्र को संगठित किया। उनके द्वारा दिया गया गीता का उपदेश उनकी विद्वता का परिचय कराने के लिए पर्याप्त है। वे महान् योगी थे, प्रकाण्ड विद्वान् थे। सर्वाधिक पराक्रमी थे, इसीलिए राजसूय यज्ञ के अवसर पर भीष्म ने उन्हीं का सम्मान करने का परामर्श दिया था। ऐसे महानायक के विषय में ऋषि दयानन्द की सम्मति सर्वाधिक उपयुक्त है कि उन्होंने जन्म से मृत्यु तक कोई भी अधर्म का आचरण नहीं किया।

योगेश्वर श्री कृष्ण के मुख्वारविन्द से निःसृत “गीता” के चुने हुए मोती

देहिनो स्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥ 2.13

अर्थ - इस शरीर में जिस प्रकार बचपन, जवानी और बुढ़ापा देहधारी को अपने आप प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार एक शरीर छूटने पर दूसरे शरीर की प्राप्ति स्वतः होती है। इसलिए धीर पुरुष शरीर छूटने पर शोक नहीं करते।

श्लोक :- वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृहणाति नरो पराणि।
तथा शरीराणि विहाय जिर्णान्य-
न्यानि संयति नवानि देही॥ 2.22

अर्थ - जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने कपड़ों को उतारकर नए कपड़े पहनता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नए शरीर को धारण कर लेता है।

श्लोक - नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ 2.23

अर्थ - आत्मा को न शस्त्र काट सकता है, न आग जला सकती है, न पानी भिगो सकता है, न वायु सुखा सकती है।

श्लोक - जातस्य हि धुवो मृत्युर्धुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्य र्थं न त्वं शोचितुर्मर्हसि॥ 2.27

अर्थ - जो पैदा होता है, उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी

मृत्यु हो गयी उसका जन्म भी निश्चित होगा। इसलिए इस निश्चित घटना क्रम के लिए तेरा शोक करना उचित नहीं।

श्लोक - कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगो स्त्वकर्मणि॥ 2.47

अर्थ - कर्तव्य कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, फल में नहीं। अतः तू अपने आपको अपने कर्तव्य कर्म के फल का कारण मत मान और न ही कर्तव्य कर्म से विरक्त हो। भाव यह है कि कर्म का फल तो अवश्य मिलेगा, परन्तु कब मिलेगा? कितना मिलेगा? कहाँ मिलेगा? यह हमें नहीं पता। यदि हम कर्तव्य कर्म करके फल प्राप्ति में अधिकार मानकर फल की कामना के लिए लालायित हो जायें, तो हमें कष्ट होगा, क्योंकि फल हमारी कामना के अनुसार नहीं मिलेगा। तत्काल फल प्राप्ति न देखकर कर्म से भी विरक्त नहीं होना है। यदि कर्तव्य कर्म से विरक्त हो गये, कर्म ही न किया तो फिर फल किसका मिलेगा? अतः गीता का सन्देश है कि अपने कर्तव्यों के करने तक ही अपने अधिकार की बात करो, फल के अधिकार की बात न करो और न ही कर्म छोड़कर बैठो।

श्लोक - योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ 2.48

अर्थ - हे अर्जुन! आसक्ति त्यागकर सिद्धि - असिद्धि के विषय में समत्व दृष्टि रखकर स्वधर्मचारण रूप सभी कर्तव्य कर्म योगस्थ होकर कर, क्योंकि चित्त के समत्व को ही योग (कर्मयोग) कहा गया है।

श्लोक - यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुज्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ 3.13

अर्थ - यज्ञ करके बचे हुए भाग से जो अपना निर्वाह करते हैं, वे संत जन सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, लेकिन जो लोग केवल अपने लिए ही पकाते हैं अर्थात् जीते हैं, वे पापी हैं और पाप का ही भक्षण करते हैं।

श्लोक - अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः।
यज्ञाद् भवन्ति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः॥ 3.14

अर्थ - प्राणि मात्र की उत्पत्ति अन्न से होती है। अन्न वर्षा से पैदा होता है। वर्षा यज्ञ से होती है और यज्ञ कर्म द्वारा सम्पन्न होता है।

श्लोक - यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ 3.21

अर्थ - श्रेष्ठ जन जैसा - जैसा आचरण करते हैं, सामान्य जन वैसा ही अनुकरण करते हैं। श्रेष्ठ जन जिसे प्रमाण मानकर स्वीकार करता है, सामान्य लोग उसी का अनुकरण करते हैं। कहने का भाव यह है कि समाज का नेतृत्व करने वाले महात्माओं, साधुओं, राजनेताओं का जैसा आचरण होगा जनता उन्हीं का अनुकरण करेगी।

श्लोक - युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ 6.17

अर्थ - आहार - विहार और कर्म में जो नियमित है तथा जिसका सोना - जागना भी उचित मात्र में है, उनके लिए ध्यानयोग दुःखनाशक बन जाता है।

श्लोक - चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो र्जुन।
आर्ते जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभः॥ 7.16

अर्थ - हे अर्जुन! आर्त = दुःखी, जिज्ञासु = जानने के इच्छुक, अर्थार्थी = भौतिक पदार्थों की कामना वाले तथा ज्ञानी, ये चार प्रकार के लोग ईश्वर की भक्ति करते हैं।

श्लोक - त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ 16.21

अर्थ - काम, क्रोध और लोभ ये तीन नरक के द्वार हैं; जो नाश कर देते हैं अतः इन्हें त्याग देना चाहिए।

श्लोक - देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ 17.14

अर्थ - ईश्वर की भक्ति, द्विज, गुरु और विद्वानों की पूजा, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य का पालन और अहिंसा का आचरण इनको शारीरिक तप कहा जाता है।

श्लोक - अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यासनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ 17.15

अर्थ - जो वचन दूसरों में उद्वेग पैदा न करें, सत्य, प्रिय और हितकारी हो तथा नित्य स्वाध्याय = वेद शास्त्रों का चिन्तन - मनन करना, वाणी का तप कहा जाता है।

श्लोक - मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते॥ 17.16

अर्थ - मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन धारण करके आत्मचिन्तन करना, इन्द्रिय संयम और चित्त शुद्धि को मानसिक तप कहते हैं।

श्लोक - श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः।
अफलाकादिक्षभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥ 17.17

अर्थ - यह तीनों प्रकार का तप यदि निष्काम भाव से श्रद्धापूर्वक समबुद्धि वाले निर्विकार व्यक्तियों के द्वारा किया जाता है तो उसे सात्त्विक तप कहते हैं।

श्लोक - सत्कारमानं पूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमधुवम्॥ 17.18

अर्थ - जो तप सत्कार, मान या पूजा के लिए दंभं पूर्वक किया जाता है। उस चंचल तथा अनित्य तप को राजसिक तप कहा जाता है।

श्लोक - मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादानार्थं वा तत्त्वामसमुदाहृतम्॥ 17.19

अर्थ - जो तप दुराग्रह प्रेरित, क्लेशजनक, दूसरों को कष्ट देने के लिए किया जाता है, उसे तामस तप कहते हैं।

श्लोक - दातव्यमिति यददानं दीयते नुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तददानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ 17.20

अर्थ - जो दान कर्तव्य (धर्म) भावना से बिना किसी के प्रति उपकार की भावना से देश, काल, पात्र देखकर दिया जाता है, वह सात्त्विक दान कहलाता है।

श्लोक - यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिदश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तददानं राजसं स्मृतम्॥ 17.21

अर्थ - जो दान प्रत्युपकार के लिए फल प्राप्ति की भावना से, दुःख के साथ दिया जाता है, उसे राजसिक दान कहते हैं।

श्लोक - अदेशकाले यददानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्त्वामसमुदाहृतम्॥ 17.22

अर्थ - अयोग्य देशकाल में अपात्र को, अनादर अवज्ञापूर्वक जो दान दिया जाता है, उसे तामसिक दान कहते हैं।

श्लोक - विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥ 17.13

अर्थ - शास्त्र प्रतिपादित विधि से रहित, बिना प्रसाद बाटे, वैदिक मन्त्रों से रहित, दक्षिणा दिये बिना, बिना श्रद्धा के किया गया यज्ञ तामसिक होता है।

श्लोक - उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ 6.5

अर्थ - व्यक्ति को स्वयं ही आत्म कल्याण करना चाहिए कभी भी अपने को हीन समझकर आत्म पतन नहीं करना चाहिए। आत्मा ही स्वयं अपना बन्धु है और आत्महीनता के भावों से युक्त यह अपना ही शत्रु बन जाता है।

वेदों के अनुसार ईश्वर का स्वरूप

वेदों में ईश्वर को सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, एक, अद्वितीय, सर्वोपरि, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं पालन करने वाला, सब का नियन्ता, शासक, न्यायाधीश आदि बताया गया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद में बताये हुये ईश्वर के स्वरूप को आर्य समाज के दूसरे नियम में इस प्रकार लिखा है - ईश्वर सच्चिदानन्द - स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर,

सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर - अमर - अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार ईश्वर एक है, परन्तु उसको अनेक नामों से पुकारा जाता है। ऋग्वेद 1.164.46 में उल्लेख है -

**इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः सः सुपर्णागरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥**

अर्थात् एक सत्स्वरूप परमेश्वर को बुद्धिमान् लोग (बहुधा वदन्ति) बहुत प्रकार से कहते हैं - अनेक नामों से पुकारते हैं। उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गुरुत्मान्, यम, मातरिश्वा नामों से पुकारते हैं। ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र में उपलक्षण मात्र कुछ नामों की चर्चा है। अन्य अनेक नाम परमेश्वर के विभिन्न गुणों के कारण वैदिक साहित्य में वर्णित हैं। गुणों पर आधारित नामों का विशेष विवेचन महर्षि दयानन्द ने अपने वेद भाष्य तथा सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में किया है। यहाँ संक्षेप में कतिपय नामों का उल्लेख प्रसंग की संपुष्टि हेतु प्रस्तुत है। विशेष विवरण उपर्युक्त ग्रन्थों में देखें। यथा - रक्षा करने के कारण परमेश्वर का नाम 'ओऽम्', सर्वत्र व्यापक होने से 'विष्णु', दुष्टों को दण्ड देके रुलाने से 'रुद्र', मंगलमय और सबका कल्याणकारी होने से 'शिव', सब जगत् की उत्पत्ति करने के कारण 'सविता', ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ होने से 'अग्नि', अविनाशी होने से 'आदित्य', ऐश्वर्ययुक्त होने से 'इन्द्र' इत्यादि नाम परमेश्वर के ही विविध गुण आधारित नाम हैं। इसी प्रकार का वर्णन यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में भी मिलता है -

**तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा:
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥**
(माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद सहिता 32.1)

अर्थात् वही एक उपास्यदेव अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप और प्रजापति नामों से पुकारा जाता है। ये नाम भी परमेश्वर के विभिन्न गुणों के आधार पर हैं।

सो यर्मा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।

(अथर्ववेद 13.4.4)

अर्थात् वही एक - अर्यमा, वरुण, रुद्र और महादेव नाम से पुकारा जाता है।

सो ग्निः स उ सूर्यः स उ महायमः।

(अथर्ववेद 13.4.5)

अर्थात् वही अग्नि, सूर्य और महायम नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अग्नि, इन्द्र आदि सब नाम एक उपास्यदेव के विभिन्न गुणों पर आधारित विभिन्न नाम हैं। इन मन्त्रों में आये हुए विभिन्न देव वाचक नामों को देखकर विविध देवों की कल्पना करना अथवा अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा को केवल जड़ पदार्थ ही समझना वेद के अभिप्राय के सर्वथा विपरीत है। क्योंकि ये शब्द प्रसंग के अनुसार परमेश्वर के भी वाचक हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से प्रमाण ऋग्वेद के सभी मण्डलों में तथा अन्य वेदों में मिलते हैं। इन सब प्रमाणों से वेद में वर्णित एकेश्वरवाद की पुष्टि होती है। यहाँ संक्षेप में कुछ प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

य एक इदं हव्यशर्चर्षणीनामिन्दं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।

(ऋग्वेद 6.22.1)

अर्थात् (यः एकः इत्) जो एक ही (र्चर्षणीनां हव्यः) - मनुष्यों का पूजनीय है। (तम् इन्द्रम्) उस इन्द्र = परमेश्वर्ययुक्त की (आभिः गीर्भिः) इन वाणियों से (अभि अर्च) पूजा कर।

य एको अस्ति दंसना महां उग्रो अभिव्रतैः।

(ऋग्वेद 8.1.27)

अर्थात् जो (परमेश्वर) एक है। कर्म से महान् है, विलक्षण तेज वाला है।

‘एको विश्वस्य भुवनस्य राजा’।

(ऋग्वेद 3.46.2)

अर्थात् सम्पूर्ण संसार का एक ही अधिष्ठाता है।

‘य एक इत्’।

(ऋग्वेद 4.17.5)

अर्थात् जो एक है।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक नमस्यो विक्षीडयः।

(अथर्ववेद 2.2.1)

अर्थात् दिव्य, गन्धर्व नाम वाला संसार का स्वामी, पूज्य और नमस्कार करने योग्य एक ही है।

‘यो देवानां नामधा एक एव’।

(ऋग्वेद 10.82.3; अथर्ववेद 2.1.3; शुक्ल यजुर्वेद संख्या 17 - 27, तैत्तिरीय संख्या 4.6.2.1 तै० आ०, 10.1.14)

अर्थात् जो समस्त पदार्थों का नाम रूप एक ही है।

‘उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी’।

(ऋग्वेद 8.13.9)

अर्थात् जो प्रजाओं का पालन और वश में करने वाला है, वह एक ही है।

अथर्ववेद 13.5.16 - 18 में दो से दस संख्या तक उल्लेख करके बहुत ही स्पष्ट रूप में समझाया गया है कि वह ईश्वर एक ही है। यथा -

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते,
य एतं देवमेकवृतं वेदः।

न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते,
य एतं देवमेकवृतं वेदः।

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते,
य एतं देवमेकवृतं वेदः।

अर्थात् - वास्तव में उसी ने सत्य को जाना है जो यह जानता है कि वह परमात्मा एक है, वह न दूसरा, न तीसरा, न चौथा, न पांचवा, न छठा, न सातवां, न आठवां, न नवां, न दसवां है।

ईश्वर की महिमा

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति, नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(यजुर्वेद 31.18 में)

अर्थ - उस स्वप्रकाश स्वरूप परब्रह्म चेतन तत्त्व को मैं जानूं, जो अज्ञान अंधकार से परे है, अचेतन प्रकृति एवं प्राकृत जगत् से परमोत्कृष्ट है, उसका नियन्ता है। क्योंकि उसको जानकर ही जीव मृत्यु दुःख से पार पा सकता है। मोक्ष को प्राप्ति कर सकता है, उस आनन्द स्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है। मोक्ष का एक मात्र साधन ब्रह्म ज्ञान ही है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

(मुण्डकोपनिषद् 2.8)

अर्थात् : उस सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी परब्रह्म को जान लेने पर जीवात्मा की हृदय ग्रन्थि टूट जाती है। हृदय की गांठ खुल जाती है। सब सन्देह छिन्न - भिन्न होकर कर्म क्षीण हो जाते हैं। हृदय की गांठ खुल जाना जीवात्मा के लिए एक विशेष स्थिति का संकेत करता है।

ब्रह्म और जीवात्मा दोनों में अत्यन्त भेद है। यद्यपि ब्रह्म सर्वगत होने से हृदय देश में रहता है तथा वहीं पर निवास करने वाला जीवात्मा सुख - दुःखादि भोग को प्राप्त करता है। परन्तु ब्रह्म को वह भोग प्राप्त नहीं होता। कारण यह है कि इन दोनों में परस्पर भेद है। जीवात्मा ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है, धर्म - अधर्म रूप कर्मों को करता है और उनके सुख - दुःख रूप फलों को भोगता है। वह कामना के वशीभूत होकर स्वकर्मों में फँसा रहता है। ब्रह्म केवल द्रष्टा है, वह शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है। देखिये कैसा है प्रभो ?

अणोरणीयान्‌महतो महीयान्, आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान् महिमानमात्मनः॥

अर्थात् - वह अणु से भी अणु है, महान् से महान् है, वह आत्मा = जीव मात्र की हृदयरूपी गुफा में छुपा हुआ है। उस परमेश्वर की महिमा को कर्म जाल से मुक्त शोक रहित भक्तगण भी उस विधाता के प्रसाद से ही = उसकी कृपा से ही प्राप्त करते हैं।

कठोपनिषद् तृतीय वल्ली में परमेश्वर के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया गया है -

ईश्वर के पास शब्द नहीं, स्पर्श नहीं, रूप नहीं, रस नहीं, गन्ध नहीं, उत्पत्ति - विनाश नहीं। ईश्वर नित्य है, अनादि है,

अनन्त है, महान् है, सबसे परे है, ध्रुव (निश्चित) है, निश्चल है, एक रस है, मनुष्य जब उसे निश्चितरूप से जान लेता है तब मृत्यु के दुःख से छूट जाता है। भगवान का वास बाहर नहीं अन्दर है। हमारे ही अन्दर।

जीवात्मा यद्यपि अदृश्य, सूक्ष्म, नित्य और अव्यय, अपरिणामी है पर वह अचक्षु, अश्रौत्र तथा अपाणिपाद नहीं माना जाता। वह अगोत्र और अवर्ण भी नहीं है। सर्ग के आदिकाल में जीवात्मा के साथ इन्द्रिय आदि समस्त कारणों का सम्पर्क बना रहता है। परमात्मा जीव के समान कभी देह बन्धन में नहीं आता, अतः परमात्मा अवतार नहीं लेता। वह तो सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है।

वह ओऽम्, प्रणव आदि अनेक नामों से जाना जाता है। वह अस्थूलम् (न मोटा है), अ अणुम् (न पतला है), अन्हस्वम्, अदीर्घम्, अलोहितम्, अस्नेहतम्, अच्छायम्, अतम्, अवायु, अनाकाशम्, असंगम्, अरसम्, अगन्धम्, अचक्षुष्म्, अश्रौत्रम्, अवाक्, अमन, अतेजस्कम्, अप्राणम्, अमुखम्, अमात्रम्, अन्नतरम् इत्यादि रूप वाला है।

अर्थ - याज्ञवल्क्य ने पत्नी गार्गी को उत्तर दिया कि वह अक्षर है, वह न मोटा है, न छोटा है, न पतला है, न लम्बा है, न लाल है, न स्नेहगुण वाला है, न छायायुक्त है, न अन्धकार है, न वायु और आकाश है, न जुड़ा हुआ है, न रसगंध वाला है, न चक्षु, श्रौत्र एवं वाणी से युक्त है। उसके विषय में कहा गया है -

अपाणि पादो जवनो ग्रहीतः पश्चत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।

अर्थात् - वह ईश्वर बिना हाथ - पैर के भी सर्वाधिक गतिमान है। वह बिना आँखों के सब कुछ देखता है और बिना कानों के सब कुछ सुनता है। न उसके मन है, न प्राण युक्त है, न मुखादि अंगों वाला है, न मापने योग्य है, न अन्तरछिद्र वाला है, न उसमें बाहर - भीतर व्यवहार होता है, न वह कुछ खाता है, न उसे कोई खाता है, ओऽम् पदवाच्य अविनाशी तत्त्व सबका आश्रय है।

गार्गी ने प्रश्न किया कि - हे याज्ञवल्क्य! जो द्युलोक से ऊपर, पृथ्वी से नीचे और द्यु तथा पृथ्वी के मध्य में है, जो अतीत है, जो वर्तमान है, जो अनागत है, वह सब किसमें ओतप्रोत है? कहां आश्रित है?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि - वह सब आकाश में ओतप्रोत है। गार्गी ने पुनः प्रश्न किया कि - वह आकाश कहां ओतप्रोत है? याज्ञवल्क्य ने इसका उत्तर दिया कि - एतद्वै तदचरं गार्गी !

ब्रह्म का मुरव्य नाम ओऽम् है

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥
(देवो कठोपनिषद् 2,15)

अर्थ - समस्त वेद जिसको प्राप्त करने योग्य बताते हैं। समस्त तप आचरण जिसके अस्तिस्व का कथन करते हैं। जिसकी चाहत से संयमी ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। मैं तुम्हें संक्षेप में कहता हूँ कि वह ओऽम् है। वह ओऽम् पद ब्रह्म का

वाचक है। यह बात यमाचार्य ने नचिकेता को भी बताई थी।

उपनिषद् ने बताया, कि वह परमात्मा उस परम गंभीर गुहा में छिपा हुआ है और उसके दर्शन के लिए वही स्थान है। तैत्तिरीय उपनिषद् में पांच कोषों का वर्णन है:-

1. बाह्य आवरण - स्थूल शरीर (अन्नमयकोष)
2. प्राणमयकोष
3. मनोमयकोष (सूक्ष्म शरीर)
4. विज्ञानमयकोष
5. आनन्दमयकोष।

इस प्रकार, स्थूल शरीर के अन्दर सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म शरीर के अन्दर हृदय गुफा में आत्मा बैठा है। यहीं आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार होता है और यही आनन्दमयकोष है।

जीवन का प्रवाह नदी के प्रवाह की तरह बह रहा है।

| | | |
|------------|----------------|---------------------------|
| जीव | प्रकृति | ईश्वर |
| भोक्ता | भोग्य | प्रेरक |
| सत् | सत् | सत् - चित् - आनन्द स्वरूप |

कठोपनिषद् में वेदज्ञान, संवादों द्वारा नचिकेता (जिज्ञासु) और यम (मृत्यु), जो कल्पित पात्र हैं, के द्वारा यह संवाद चल रहा है। वैदिक साहित्य में गुरु, आचार्य, शिष्य को तीन दिन, तीन रात गर्भ में धारण करके जन्म देता है। (ब्रह्मचारी अपने पिछले रूप को मारकर नया जन्म लेता है) नचिकेता भी यमद्वार पर तीन दिन रहा। यमाचार्य के आकर प्रसन्न होने पर नचिकेता ने तीन वरदान मार्गे :-

(1) पहला वर - मेरे पिता, वाजश्रवा गौतम, शान्त, सरल, प्रसन्न मन, क्रोध रहित हों।

(2) दूसरा वर - स्वर्ग में न मौत तू है, न जरावस्था का भय है। यमाचार्य तुम! उस स्वर्ग को प्राप्त करने वाली अग्नि को जानते हो, उसका उपदेश दो। उसके द्वारा अनन्त लोकों के सुखों की प्राप्ति होती है परन्तु वह अग्नि गुहा में निहित है, यह रहस्य जानना है। यमाचार्य बोले - कुशाग्र बुद्धि नचिकेता! तेरे ही नाम से वह अग्नि प्रसिद्ध होगी। अग्नि के समान अनेक रंगों वाली माला उसको पहनाई। स्वर्ग साधक अग्नि त्रिनाचिकेताग्नि होगी अर्थात् नचिकेत अग्नि की ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ इन तीन आश्रमों में उपासना करेगा। यहाँ इन आश्रमों की तीन सन्धियों की ओर संकेत है। ब्रह्मचर्य से जब वह गृहस्थ में प्रवेश करता है, तो इन दोनों आश्रमों के बीच की संधि को पार कर लेता है। जब गृहस्थी वानप्रस्थ में प्रवेश करता है तब इन दोनों आश्रमों के बीच की संधि को पार कर लेता है और जब वानप्रस्थ से संन्यास में प्रवेश करता है तब इन दोनों आश्रमों के बीच की संधि को पार कर लेता है। इस प्रकार चार आश्रमों के बीच तीन संधियां हैं।

कठोपनिषद् में इसी की ओर संकेत करते हुये कहा है कि जो इन तीन संधियों को पार कर लेता है, वह अत्यन्त शांति को प्राप्त कर लेता है। यही वह स्वर्ग की साध क अग्नि है।

व्याख्या: - यमाचार्य का भाव यह है कि जिस स्वर्गीय अग्नि का यहाँ उपदेश दिया गया है। वह यज्ञ-याग आदि में

प्रयुक्त होने वाली अग्नि नहीं है, अपितु आत्मचिन्तन रूप ज्ञान को बढ़ाने वाली साधना ही अग्नि है। यह साधना रूप अग्नि तीन सन्धियों को पार करते हुए उत्पन्न होती है। इसी को यमाचार्य ने त्रिनाचिकेत अग्नि कहा है, जो साधक ब्रह्मचर्य आश्रम को पूर्ण करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर गया। मानो उसने एक अग्नि सिद्ध कर ली तथा जो साधक गृहस्थ आश्रम से वानप्रस्थ में चला गया। उसने दूसरी अग्नि सिद्ध कर ली, और जो वानप्रस्थ से संन्यास आश्रम में चला गया, उसने तीसरी अग्नि सिद्ध कर ली। जो यह साधना पूर्ण कर लेता है मानो वह ब्रह्मयज्ञ की साधना कर लेता है। ब्रह्म का अर्थ है - विस्तार को प्राप्त करना अर्थात् अपने गुणों को बढ़ाकर महान् बन जाना। इस प्रकार जीवन के इन चार पड़ावों से यात्रा करता हुआ साधक अपना विस्तार करता है। इसी का नाम त्रिनाचिकेत अग्नि यम ने रखा है। इन तीनों अग्नियों अर्थात् साधनाओं के रहस्य को समझकर जो साधना करता है, वह सब प्रकार के दुःखों को पार करके मृत्यु के बन्धनों से मुक्त होकर स्वर्ग अर्थात् मोक्ष में आनन्द से रहता है।

त्रिनाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य

एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम्।

स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य।

शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥

(कठोपनिषद् 1.18)

इसके बाद यमाचार्य ने नचिकेता को तीसरा वर मांगने को कहा। तब नचिकेता ने तीसरा वर मांगते हुए कहा कि हे यमराज! मेरा तीसरा वर यह है कि मृत्यु हो जाने पर मनुष्य रहता

है अथवा नहीं रहता? यह वर नचिकेता का आत्मा के सम्बन्ध में है कि आत्मा मर जाता है या जीवित रहता है?

यमराज का उत्तर : - हे नचिकेता! तुम ने बड़ा सूक्ष्म प्रश्न पूछ लिया, इसको जानना आसान नहीं है। तुमसे पहले इस विषय में अनेक विद्वान् जिज्ञासा कर चुके हैं। तुम इसके स्थान पर दूसरा वर मांग लो। नचिकेता कहता है, हे यम! आपके अतिरिक्त इस प्रश्न का उत्तर कोई और नहीं दे सकता। अतः मुझे तो यही वर मांगना है कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है?

यमाचार्य बोले नचिकेता! तुम पुत्र, पौत्र, पशु, स्वर्ण, धन, जमीन, राज्य मांग लो। जब तक जीना चाहो उतनी आयु मांग लो। किन्तु मरण विषय पर प्रश्न मत करो। जितनी कामनाएँ हैं, सब तेरी इच्छा मात्र से पूरी हो जाएं। यह वर भी तुम्हें दे सकता हूँ।

नचिकेता - ये सारे सुख आज हैं कल नहीं रहेंगे। भोग भोगने से शान्त नहीं होंगे। भोगों से इन्द्रियों का तेज भी नष्ट हो जायेगा। इन सबको तू अपने पास रख मुझे नहीं चाहिये। हे मृत्यु! जितना तू चाहेगा उतना ही तो हम जी सकेंगे। मैं तो वही वर चाहता हूँ। हे मृत्यु! जिस बात को जानने को लोग अष्टांग योग की साधना करते हैं। मृत्यु के बाद उस आत्मा का जो रूप है वही हमें बताइये।

यमाचार्य बोले - जीवन में मनुष्य के लिए दो मार्ग हो सकते हैं, एक है - श्रेय मार्ग और दूसरा है - प्रेय मार्ग (प्रिय लगने वाला मार्ग)। श्रेय मार्ग को ग्रहण करने वाले का भला होता है और जो प्रेय का वरण करता है वह अंतिम लक्ष्य से भटक जाता है। सद्बुद्धि,

योगक्षेम, कुशल मंगल, सुख - चैन आराम से जीने की कामना वाला प्रेय का वरण करता है। नचिकेता - तूने खूब सोच - समझकर यह वर मांगा है। नचिकेता ने कहा - धर्म से, अधर्म से, कृत से, अकृत से, भूत से, भव्य से जो संसार की वस्तुओं से भिन्न है, जिन्हें आप देखते हैं, उसका उपदेश कीजिए।

आचार्य ने कहा - जिस पद (शब्द) का वेद वर्णन करते हैं, तप उसी को पुकारते हैं, जिसके लिए ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, वह शब्द ओऽम् है। आत्मा अमर, नित्य, अजन्मा, पुरातन है, न ये मरता है और अणु है। ब्रह्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। वह सबसे महान् परमात्मा, जीवरूपी जन्मु की गुफा में छिपा बैठा है। उसको पाने, चाहने वाला आत्मा अपने स्वरूप को उसके सामने खोलकर रख देता है। माया में उलझा हुआ उसे नहीं प्राप्त कर सकता, उसे योगाभ्यास द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

प्रेय मार्ग की स्वर्ण जंजीर में प्रायः सब जकड़ जाते हैं। मैं मान गया कि तू विद्या चाहने वाला है। नचिकेता श्रेय मार्ग का यात्री है, तुझे कोई संसार की भोग्य वस्तु ललचा नहीं सकती, तूने प्रेय मार्ग पर चलना पसन्द नहीं किया। लोग अविद्या में फंसे, भोगों में ढूबे, अपने को धीर पंडित मानकर ऐसे जा रहे हैं, जैसे - अन्धा अन्धे को रास्ता दिखा रहा हो। ऐसे प्रेय मार्ग पर चलने वाले अविद्या में फंसे लोग योग साधना के सोलह नियमों को भी पसन्द नहीं करके उनको उलझन मानते हैं। गीता 2.69 में भी आया है:-

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुने॥

ऐसे लोग इस प्रेय मार्ग को ही स्वर्ग सुख मानते हैं, असली परलोक को नहीं जानते। ऐसे लोग मरते एवं पैदा होते हैं। तुझे वह सत्य के खोज की बुद्धि मिल गई है। मैं स्वयं तीनों सधियों से गुजरा हूँ। जो कि अग्नि स्नान के समान होती है, मैं समझ गया हूँ, तूने पुत्रैष्णा (पुत्र की इच्छा), वित्तैष्णा (धन की इच्छा), लोकैष्णा (सम्मान की इच्छा) को त्याग दिया है। वह अध्यात्म योग, गूढ़ है और जब उसका पालन करके मनुष्य इन्द्रियों को विषयों की तरफ जाने के बजाय आत्मा की तरफ चलाता है तब उस देव को जानकर द्वन्द्वों से ऊपर उठ जाता है। मैं बता रहा हूँ - श्रवण, मनन, ग्रहण करके उसका निदिध्यासन करने से अणुसूक्ष्म ब्रह्म प्राप्त होता है। ब्रह्म के दर्शन करने से आत्मा सब दुःखों से छूट जाता है। इस अवस्था में उसे आनन्द ही आनन्द की अनुभूति होती है।

शास्त्र में ब्रह्म का स्वरूप सत्, चित्, आनन्द बताया है। ब्रह्म सत्य स्वरूप है, अपरिणामी है, उसमें कभी किसी प्रकार का कोई विकार नहीं होता। वह ज्ञान अर्थात् चेतन स्वरूप है, अनन्त है, सर्वव्यापक है। जो जिज्ञासु परम गम्भीर हृदयाकाश में विराजमान उस ब्रह्म को जान लेता है, वह चेतन स्वरूप ब्रह्म के साथ रहता हुआ सब अभीष्ट कामनाओं का भोग करता है। देह बन्धन में रहते हुए जीवात्मा के लिए ब्रह्मज्ञान का केन्द्र हृदयाकाश बताया गया है। यद्यपि ब्रह्म सर्वव्यापक है, पर उसके उस स्वरूप को जानते हुए उसका साक्षात्कार हृदयाकाश में धारणा - ध्यान - समाधि के द्वारा किया जाता है।

आत्मा का निवास हृदय देश शरीर में कहाँ अवस्थित है, इस विषय पर विद्वानों में मतभेद हैं। पर गम्भीर विवेचन से यह

निर्णय किया गया है कि यह स्थान मस्तिष्कगत हृदयदेश है। रक्त प्रक्षेपक हृदय नहीं। वही देश आत्मा का निवास है, वहाँ ध्यान करने से आत्मा के साक्षात्कार के साथ ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

उपनिषद् ने बताया है कि उस परम गम्भीर गुहा में वह छिपा हुआ है। उसके दर्शन के लिए वही स्थान है। उसी गुहा में प्रवेश करने के लिए यहाँ तैत्तिरीय उपनिषद् में पांच कोशों का वर्णन है। जहाँ अन्नमय स्थूल शरीर से आरम्भ कर उत्तरोत्तर सूक्ष्म में प्रवेश करते हुए सबसे अंत में परम सूक्ष्म आनन्दमय कोश का उपदेश है। यह आनन्दमय पद परमात्मा का निर्देश करता है। उसका ज्ञान या उसकी प्राप्ति हो जाने पर जीवात्मा के लिए यह मोक्ष स्थान है। कौन जीवित रह सकता है, और कौन प्राण ले सकता है, वह उस सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, आनन्दरूप ब्रह्म के अधीन है। उसी के आश्रय से समस्त चराचर जगत् का अस्तित्व है। वही सबको आनन्दित करता है।

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

अर्थात् - यह जगत् रचयिता देव परमात्मा सदा प्राणियों के हृदय में समाविष्ट रहता है, विवेक बुद्धि से इसका साक्षात्कार होता है, जो इसको जान लेते हैं, वे अमर होकर मोक्षानन्द को प्राप्त कर लेते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् (तृतीय अध्याय)

एक समय गार्गी (याज्ञवल्क्य की पत्नी) ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि जो द्यु से ऊपर है, पृथ्वी से जो नीचे है, द्यु

और पृथ्वी के जो बीच में है, जिसे भूत - भविष्य कहा जाता है, वह किसमें ओत - प्रोत है?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया - जो द्यु से ऊपर है, पृथ्वी से जो नीचे है, द्यु और पृथ्वी के जो बीच में है, जिसे भूत, भवत्, भविष्यत् कहा जाता है, वह सब आकाश में ओतप्रोत है। इसी प्रकार गार्गी द्वारा अनेक प्रश्नों के उत्तर याज्ञवल्क्य ने दिए। आकाश जिसमें ओत - प्रोत है, उसे ब्रह्म - वेत्ता लोग अक्षर कहते हैं। वह अक्षर अविनाशी तत्त्व, न स्थूल है, न अणु है, न हस्त है, न दीर्घ है, न अंगारे की तरह लोहित है, न धी की तरह स्निग्ध है, न छाया है, न तम है, न आकाश है, यह तत्त्व असंग है, अरस है, अगंधा है, अचक्षु है, अश्रौत्र है - वाक् रहित, मन - रहित है।

इस अविनाशी तत्त्व के न कुछ भीतर है, न बाहर है, न वह किसी को खाता है, न कोई उसे खाता है। हे गार्गी! इसी 'अक्षर' के शासन सूत्र में बंधे सूर्य, चन्द्र अपने स्थानों पर ठहरे हुए हैं। इसी अक्षर के शासन - सूत्र में बंधे निमेष, मुहूर्त, रात्रि, अर्धमास, मास, ऋतु, संवत्सर ठहरे हुए हैं। हे गार्गी! इसी अक्षर के शासन में बंधी नदियाँ, बर्फीले पर्वतों से, पूर्व को, पश्चिम को और भिन्न - भिन्न दिशाओं में बह रही हैं। हे गार्गी! इसी अक्षर के शासन - सूत्र में बंधे हुए आप्त पुरुषों की विश्व में प्रशंसा होती है। देव - लोग, यजमानों की प्रशंसा करते हैं और पितर - लोग होम की कड़छी को पकड़े मानो मानव सेवा की आहुतियाँ डाल रहे हैं।

हे गार्गी! जो लोग इस अक्षर के जाने बिना यज्ञ, तप आदि में लीन रहते हैं। उनके यज्ञ, तप का अंत आ ही जाता

है। जो अक्षर के बिना जाने इस लोक से प्रयाण करते हैं, वह कृपण हैं और जो इस अक्षर को जानकर प्रयाण करता है, वह ब्राह्मण है। ब्रह्म - वेत्ता है। इस अक्षर से भिन्न कोई द्रष्टा नहीं है, श्रोता, मन्ता, विज्ञाता भी नहीं है। इसी अक्षर में यह आकाश ओत - प्रोत है।

एक बार विद्वान् विदग्ध ने याज्ञवल्क्य से पूछा - 3306 देव जो तुमने कहे थे, वो कौन से हैं। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया - वास्तव में देव तो 33 ही हैं - 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य, इन्द्र व प्रजापति। अग्नि, पृथ्वी, वायु, अंतरिक्ष, आदित्य और द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र, ये 8 वसु हैं। इन्हीं पर सारी सृष्टि टिकी हुई है। यही जीव मात्र को बसाए हुए हैं, इसीलिए वसु कहलाते हैं। अब सुनो पुरुष में, दस प्राण और 1 आत्मा, ये 11 रुद्र हैं। प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, देवदत्त, कृकल और धनंजय ये दस प्राण माने जाते हैं। इन्द्रियों को भी प्राण कहते हैं, 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कर्मेन्द्रियाँ और मन मिलाकर 11 रुद्र बनते हैं। जब ये शरीर से निकलते हैं तब सम्बन्धियों को रुला देते हैं, इसलिए इन्हें रुद्र कहा जाता है।

आदित्य - 12 मास ही आदित्य हैं। (जनक की सभा में याज्ञवल्क्य तथा गार्गी का विवाद) गार्गी ने पूछा - ये पृथ्वी चारों तरफ से जल में ओत - प्रोत है, जल ही इस पृथ्वी पर छा रहा है। जल किसमें ओत - प्रोत है? याज्ञवल्क्य ने कहा - वायु में, वायु? अंतरिक्ष लोकों में, अंतरिक्ष? गंधर्व लोकों में, गंधर्व लोक? आदित्य लोकों में, आदित्य लोक? चन्द्र लोकों में, चन्द्र लोक? नक्षत्र लोकों में ओत - प्रोत है - नक्षत्र लोक? देव लोक में, देव लोक? इन्द्र लोक में, इन्द्र लोक? प्रजापति

लोकों में, प्रजापति लोक? कपड़े के ताने-बाने की तरह ब्रह्म लोक में। हे गार्गी! अनति प्रश्न्य (जिसके विषय में बहुत प्रश्न नहीं किये जा सकते हैं) अर्थात् जो प्रश्नोत्तर से नहीं जाना जा सकता। उस देवता के विषय में मत पूछ उसके लिए अति प्रश्न हो ही नहीं सकता, गार्गी चुप हो गई।

एक बार कबंध ने काव्य से प्रश्न किए - क्या तुम उस सूत्र को जानते हो, जिसमें ये लोक-परलोक और भूत मनके की तरह पिरोये हुए हैं। जो उस सूत्र को, उस अंतर्यामी को जानता है, वही ब्रह्मवित्, लोकवित्, देववित्, भूतवित्, आत्मवित्, और वही सर्ववित् है। याज्ञवल्क्य ने कहा - हे गौतम आरुणी! सुन जो पृथ्वी में रहता हुआ भी पृथ्वी से अलग है, जिसे पृथ्वी नहीं जानती परन्तु जिसका पृथ्वी ही शरीर है, जो पृथ्वी के भीतर से उसका नियमन कर रहा है, यही तेरी आत्मा है, यही अंतर्यामी है, अमृत है। इसी प्रकार जलों में रहता हुआ अग्नि में, अंतरिक्ष में, द्यु में, आदित्य में, दिशाओं में, चंद्र-तारक में, आकाश में, तम में, तेज में, पृथ्वी में, सब भूतों में, प्राणियों में आदि - आदि सब में रहता हुआ भी इनसे अलग है, ये जिसको नहीं जानते परन्तु वे ही उसका शरीर हैं, जो उसके भीतर से उनका नियमन कर रहा है, वही तेरा आत्मा अंतर्यामी है, प्राणियों में, वाणी में, चक्षु में, श्रौत्र में, मन में, त्वचा में, जो विज्ञान, अर्थात् चेतना में रहता हुआ इनसे अलग है, ये चेतना आदि उसको नहीं जानते परन्तु ये चेतना आदि है, जिसका शरीर है, जो चेतना आदि के भीतर से उसका नियमन कर रहा है, वह तेरी आत्मा है, आत्मा - अंतर्यामी, अमृत है। संसार के रेतस् अर्थात् कारण है, उनमें रहता हुआ भी उनसे अलग है,

जिसे कारण नहीं जानते, कारणों का कारण है, बीजों का बीज है, जो कारणों के भीतर से उसका नियमन कर रहा है, यही तेरी आत्मा है। वह अंतर्यामी, द्रष्टा है, दृश्य नहीं। श्रोता है, श्रुत नहीं। मन्ता है, मत नहीं। विज्ञाता है, विज्ञात नहीं। विश्व में उसके बिना कोई द्रष्टा नहीं, श्रोता नहीं, मन्ता नहीं, कोई विज्ञाता नहीं, यही तेरा आत्मा - अंतर्यामी है। उसके अतिरिक्त सब दुःख ही है, यह सुनकर उद्दालक आरुणी चुप होकर बैठ गया।

आर्तभाग एवं याज्ञवल्क्य के प्रश्न - उत्तर :-

आर्तभाग ने पांचवा प्रश्न किया - कि अब तक हमारी तुम्हारी मुक्त होने वाले पुरुष के विषय में चर्चा हुई। अब 'बद्ध' जीव के विषय में मेरे प्रश्न का उत्तर दो:-

जब ये पुरुष मर जाता है और उसकी वाणी अग्नि में, प्राण वायु में, चक्षु - आदित्य में, मन चन्द्रमा में, श्रौत्र दिशाओं में, शरीर पृथ्वी में, शरीरवर्ती आकाश ब्रह्मांड के महा - आकाश में, लोम औषधियों में, "केश" वनस्पतियों में, शोणित और रेतस् जल में लीन हो जाते हैं। जब कार्य अपने कारण में, पिंड ब्रह्मांड में चल देता है, तब जीव का आधार कुछ नहीं बचता, फिर जीव किस आधार से रहता है? रहता भी है या नहीं अथवा वह भी समाप्त हो जाता है? वे दोनों उठकर दूर जाकर विचार विनिमय करने लगे और उन्होंने कर्म ही की चर्चा की, कर्म की प्रशंसा की और निष्कर्ष निकाला कि सब कुछ छूट जाने पर भी कर्म नहीं छूटता, कर्म के सहारे ही जीव टिका रहता है। पुण्य कर्म से जीव पुण्य करने वाला होता है, पाप कर्म से पाप करने वाला होता है।

याज्ञवल्क्य तथा कहोल का संवाद

कहोल ने पूछा कि जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है, जो आत्मा है, सर्वान्तर है, सबके भीतर है, उसकी व्याख्या फिर करो। हम तो भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु से धिरे हुए हैं, हमारे भीतर वह कौन सा आत्मा है, जो भूख आदि को लाघे हुए है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया - यह वही आत्मा है जिसे जान लेने पर ब्रह्मज्ञानी, पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा से मुंह फेरकर ऊपर उठ जाते हैं - ये एषणाएँ बड़ी प्रबल हैं छूटती नहीं, पर उसके जान लेने पर अपने आप छूट जाती हैं।

प्रकृति, जीवात्मा और ईश्वर तीनों का विवेचन

द्वा सुपर्णा सयुजा सरवाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिष्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

ऋग्वेद से (1/164/20)

ऋग्वेद के इस मन्त्र में तीन अनादि सत्ताओं का वर्णन किया गया है - (1) प्रकृति (2) जीवात्मा (3) परमात्मा। प्रकृति का एक ही गुण है - सत्। अर्थात् प्रकृति की सत्ता है। वह जड़ है। प्रकृति कभी नष्ट नहीं होती केवल इसका रूप बदलता रहता है। प्रलय अवस्था में भी अपने मूल रूप में विद्यमान रहती है। जीवात्मा में दो गुण हैं - सत् और चित्। अर्थात् जीवात्मा की सत्ता भी है और वह चेतन भी है। जीवात्मा की पहचान के लिए भारतीय दार्शनिकों ने निम्नलिखित सिद्धान्त बताया है :-

इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख - दुःख, ज्ञानान्यात्मनो
लिङ्गम् (न्याय दर्शन - 1.1.10) अर्थात् - वह इच्छा करता है,

राग द्वेष करता है, प्रयत्न करता है, सुख - दुःख का अनुभव करता है, ज्ञान प्राप्त करता है। जहां ये गुण विद्यमान हों वहां जीवात्मा का निवास है। परमात्मा के तीन गुण हैं - सत्, चित् और आनन्द। परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अनादि और एक है। जीव अल्पज्ञ, एकदेशी, अनादि और अनेक हैं।

दो चेतन तत्त्व एक प्रकृतिरूपी वृक्ष के साथ सम्बद्ध हैं, एक जीवात्मा, भोक्तारूप में तथा दूसरा परमात्मा अभोक्ता व नियन्ता रूप में है। चूल्हे या भट्टी में रहता हुआ भी आकाश जलता नहीं, क्योंकि उसमें जलने की योग्यता नहीं। ब्रह्म हृदय देश में रहता हुआ भी भोक्ता नहीं, क्योंकि उसमें उसकी योग्यता नहीं। भोग की योग्यता धर्म - अधर्म रूप कर्मानुष्ठान से प्राप्त होती है। यह ब्रह्म में संभव नहीं। अतः ब्रह्म को भोग प्राप्त नहीं होता।

जीवात्मा अपने किये कर्मों का व्यवस्था पूर्वक फल भोगता है और आगे कर्मानुष्ठान में लगा रहता है। परमात्मा अपनी नियत व्यवस्थाओं के अनुसार विश्व के उत्पादन, धारण एवं लय आदि में संलग्न रहता है। जीवात्मा का कार्यक्षेत्र देहमात्र है, ऐसे ही ब्रह्म का समस्त ब्रह्माण्ड है।

दिव्यो हयमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो हयजः।
अप्राणो हयमना: शुभ्रो हयक्षरात् परतः परः॥
(मुण्डकोपनिषद् 2.2)

अर्थ - दिव्य - जो अपने प्रकाशमय रूप में सदा अवस्थित रहता है। अमूर्त - जो कभी किसी मूर्ति या आकार को धारण नहीं करता। बाह्यन्तर समस्त विश्व में व्याप्त है। अज - जो स्वरूप अथवा उपाधि द्वारा कभी जन्म नहीं लेता, देहादिबन्ध

न में नहीं आता। इसी कारण जो अप्राण - प्राण रहित तथा अमना - मन एवं इन्द्रियादि रहित है। शुभ्र - जो सर्वात्मना शुद्ध है, कलेश, कर्म एवं विपाक आदि से सर्वथा अछूता है, ऐसा है वह ब्रह्म पुरुष।

दिव्य, अमूर्त आदि विशेषणों द्वारा जिस तत्त्व का अभिव्यंजन किया गया है वह जीवात्मा या प्रकृति नहीं हो सकते, क्योंकि उनमें यह सब विशेषता नहीं देखी जाती। जीवात्मा सर्वव्यापक नहीं देहादि द्वारा जन्म - मरण के बन्धन में आता है। इसलिए न वह अप्राण है और न अमना। वह कलेश, कर्मादि से अभिभूत रहता है। इसलिए जीवात्मा में यह विशेषण सम्भव नहीं। प्रकृति जड़ होने से सदा एकरूप नहीं रहती, उसमें विविध परिणाम हुआ करते हैं। इसलिए वह दिव्य नहीं, अमूर्त नहीं, यह स्पष्ट है। समस्त मूर्त विश्व उसी का परिणाम है।

तस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।

अग्निं यश्चक्रे आस्य तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

यस्य वातः प्राणपानौ चक्षुरंगिरसोभवन्।

दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

अर्थ - भूमि जिसका पैर है, अंतरिक्ष पेट और द्यौ सिर है, उस सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म के लिए नमस्कार है, सूर्य तथा पुनः पुनः नवीन होता चन्द्रमा जिसके नेत्र हैं, अग्नि को जिसने अपना मुख बनाया है, उस सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म के लिए नमस्कार है। वायु जिसके प्राण - अपान और समस्त प्रकाश चक्षु हुए तथा

दिशाओं को जिसने व्यवहार साधन बनाया, उस सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म के लिए नमस्कार है। इसी के अनुसार मुण्डक उपनिषद् (2, 4) में वर्णन हैं।

अग्निमूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः

श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।

वायुः प्राणोहृदयं विश्वमस्य पदभ्यां

पृथ्वी हयेष सर्वभूतान्तरात्मा॥

अर्थ - तेजोमय द्युलोक जिसका सिर है, चन्द्र - सूर्य नेत्र हैं, दिशा श्रौत्र और विस्तृत वेद वाणी है, वायु प्राण एवं विश्व हृदय है तथा पृथ्वी पैर हैं। यह समस्त जगत् का अन्तरात्मा है। ये उल्लेख ब्रह्म के विराटरूप और उसकी सर्वान्तर्यामिता का वर्णन करते हैं।

जगत् चाहे कार्यरूप है अथवा कारणरूप, उसका कोई ऐसा अंश नहीं जो परमात्मा से व्याप्त न हो। जीवात्मा भोक्ता है तथा देहादि भोग्य हैं। देह में जीवात्मा का जब तक निवास रहता है, उस समय तक देह संचालित रहता है। जीवात्मा के निकल जाने पर देह में उन समस्त क्रियाओं का अभाव हो जाता है।

ब्रह्म (ईश्वर) की पहिचान परिभाषा देखिये यजुर्वेद के 40 वें अध्याय का 8वां मंत्र, जो कि ईशावास्योपनिषद् में भी 8वें ही क्रम में आया है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमवणमस्नाविरं,

शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्यथातथ्यतोर्थान्व्य -

दधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

अर्थ - वह सब जगह गया हुआ है, वह शुद्धता की चरम सीमा है। शुक्र (शुद्धदीप्त) है। उसकी काया नहीं तो ब्रण कहां, नस नाड़ी कहां? भौतिक दृष्टि से हम उसे शुद्ध कहते हैं, मानसिक दृष्टि से पाप रहित कहते हैं, वह कवि (क्रान्तदर्शी) है। यह भौतिक संसार उसका काव्य है। वह मनीषी है (मनन करने वाला), ज्ञानी है। मानसिक संसार का भी वही स्वामी है। वह परिभू (सब और सब जगह व्याप्त) है, परन्तु साथ ही वह स्वयं भू (उसका कोई रचयिता नहीं) है। शाश्वत् काल से जो यह सृष्टि चल रही है। निरन्तर सृष्टि का प्रवाह चलता जा रहा है। उसके लिए ठीक-ठीक पदार्थों की व्यवस्था जिस समय जो कुछ होना चाहिये यह सारा प्रबन्ध वहीं कर रहा है।

न तत्र सूर्योऽभाति न चन्द्रतारकम्।
नेमाविद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्या
भासा सर्वमिदं विभाति॥

(कठोपनिषद् 5.15)

अर्थ - सूर्य यद्यपि अन्य जड़ जगत् का प्रकाशक है। परन्तु ब्रह्म के प्रकाशन में सर्वथा असमर्थ है। ऐसे ही चांद - तारे विद्युत् और अग्नि आदि से ब्रह्म प्रकाशित नहीं होता। प्रत्युत उसके प्रकाश से ये सब पदार्थ प्रकाशित हैं। कारण यह है कि सूर्यादि पदार्थों की इस प्रकार की रचना ब्रह्म के बिना असंभव है। इनको यह स्वरूप अथवा अस्तित्व ब्रह्म की प्रेरणा द्वारा प्राप्त होता है, इसलिए इनका प्रकाशित होना ब्रह्म के अस्तित्व पर निर्भर है। उसके प्रकाशन से ये प्रकाशित हैं। इसी कारण वह ज्योतियों का ज्योति है।

देखिये एक शायर के शब्दों में ईश्वर?

1. बेहिजाब ऐसा कि हर जर्रे में जलवा लाशकार।
उसपे पर्दा ये के सूरत आज तक देखी नहीं॥
2. जर्रे जर्रे से अयां होने के बाद,
आज तक राजे हकीक़त राज़ है।
3. तेरी बेमिस्त्त कुदरत का, हर एक पत्ते में दफ्तर है।
तेरा देखा है सिक्का, सिब्त हमने दाने-दाने में॥
4. वो शजर (पेड़) में है, वो समर (फलों) में है।
वो हर एक ज़ेरो (नीचे) ज़बर (आसमान) में है।
वो यहां भी है, वो वहां भी है।
वो जहां नहीं तो जहां (संसार) नहीं॥

वेद में जड़ देवता उपास्य नहीं

वेद में वर्णित अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु आदि देवता वाचक नामों के कारण कतिपय विद्वान् वेद में जड़ देवताओं की उपासना का प्रतिपादन करते हैं। यह मान्यता 'देव' शब्द के अर्थ को न समझने के कारण विकसित हुई है। वैदिक साहित्य में 'देव' शब्द के अनेक अर्थ हैं। इसी कारण वेद में वर्णित अग्नि, सूर्य, सोम आदि शब्दों के भी विभिन्न अर्थ हो जाते हैं। इन देववाचक पदों का अर्थ जब भौतिक जड़ पदार्थ, प्राणी अथवा वेद का वर्ण्य विषय होता है तब ये पदार्थ उपास्य नहीं हैं। जब इनका अर्थ परमेश्वर होता है तब ही इन नामों से एक परमेश्वर की उपासना का प्रतिपादन वेद में है। इसको समझने के लिए देव शब्द के अर्थ पर विचार करना होगा।

‘देव’ शब्द का अर्थ :-

यास्काचार्य ने निरुक्त में ‘देव’ शब्द की निष्पति दा, द्युत्, दीप् तथा दिव् इन धातुओं से मानी है। यथा -
 “देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्यु स्थानो भवतीति वा।”
 (निरुक्त, 7.15)

इस निर्वचन के अनुसार दान देने वाले, स्वयं प्रकाशमय तथा अन्यों को प्रकाशित करने वाले, द्यु स्थान में रहने वाले, प्राणी तथा अप्राणी पदार्थ देव कहलाते हैं। दिव् धातु क्रीड़ा जीतने की इच्छा, व्यवहार, प्रकाश, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति अर्थों को बताती है।

**दिवुक्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद -
 स्वप्नकान्तिगतिषु।**
 (पाणिनीय धातुपाठ)

जब दिव् से ‘देव’ शब्द की निष्पति की जायेगी, तब ‘देव’ शब्द भी उपर्युक्त सभी अर्थों का ज्ञापक होगा। इस प्रकार जड़ पदार्थ और चेतन प्राणी दोनों देव कहलायेंगे।

वेद - मन्त्रों के विषय को भी देवता कहा जाता है।

**यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं
 प्रयुड्कते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।**
 (निरुक्त 7.1)

ऋषि वेद मन्त्रों का अर्थ करते समय जिस विषय का वर्णन करते हैं, उस मंत्र का वही देवता अर्थात् विषय होता है।

इस प्रकार देव शब्द चार अर्थों का ज्ञापक है :-

(क) परमेश्वर

(ख) परोपकारी चेतन प्राणी।

(ग) प्रकाश्य और प्रकाशक अग्नि, सूर्य, वायु आदि जड़ जगत्।

(घ) वैदिक मन्त्रों का प्रतिपाद्य (विषय)।

इनमें उपास्य तो मात्र परमेश्वर ही है जिसका विवेचन ऊपर किया गया है। देवों का वर्णन वैदिक साहित्य में प्रतीक, कल्पना और आख्यानों के माध्यम से पर्याप्त दुर्बोध्य है। इस दुर्बोध्यता के कारण पाश्चात्य विद्वान् उपास्य देव और अन्य देवों में भेद करने में असमर्थ रहे। इस कारण उनको जड़ देवों की उपासना का भ्रम हुआ। योग दर्शन में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है -

क्लेश कर्म विपाकाशैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः ॥ 1.24 ॥

अर्थ - वह अविद्या आदि क्लेशों से रहित है, शुभाशुभ मिश्रित कर्म नहीं करता, केवल शुभ कर्म ही करता है। वह कर्मों का फल नहीं भोगता और कर्मों का फल भोगने से उत्पन्न होने वाले संस्कार उसमें नहीं होते, अतः वह पुरुष विशेष ईश्वर है।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ 1.25 ॥

अर्थ - जिससे अधिक कोई भी ज्ञानी नहीं है और जो सर्वज्ञ है, वह ईश्वर है।

पूर्वषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ 1.26 ॥

अर्थ - जो सभी पूर्वजों वर्तमान और भविष्य में होने वाले गुरुओं का भी गुरु है और जो काल से कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता, वह ईश्वर है।

उत्तर – वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसःपरस्तात्।
तमेव विदित्वा ति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(यजु. 31.18)

प्रश्न – हे जिज्ञासु पुरुष (अहम्) मैं जिस (एतम्) इस पूर्वोक्त (महान्तम्) बड़े-बड़े गुणों से युक्त (आदित्य वर्णम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप (तमसः) अन्धकार या अज्ञान से (परस्तात्) पृथक् वर्तमान (पुरुषम्) स्वरूप से सर्वत्रपूर्ण परमात्मा को (वेद) जानता हूँ। (तमेव) उसी को (विदित्वा) जानके आप (मृत्युम्) दुःखदायी मरण को (अति इति) उल्लंघन कर जाते हो, किन्तु (अन्य) इससे भिन्न (पन्था) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिये (न विद्यते) नहीं विद्यमान है।

(महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत यजुर्वेद भाष्य)

इस वेद मन्त्र से स्पष्ट है कि जो व्यक्ति ईश्वर जीव और प्रकृति को ठीक-ठीक व्यावहारिक रूप में जानकर ईश्वर का प्रत्यक्ष कर लेता है, वह समस्त दुःखों से छूटकर नित्यानन्द को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त दुःख से छूटकर नित्यानन्द की प्राप्ति का और कोई भी मार्ग नहीं है।

रसो वै सः।
रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति॥

(तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मवल्ली 7)

वह ईश्वर आनन्द स्वरूप है, उस आनन्द स्वरूप को प्राप्त करके यह जीव आनन्दी होता है।

भिद्यते हृदयगन्थिश्छद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टेपराऽवरे॥
(मुण्डकोप: 2.2.8)

जो ईश्वर पर से भी पर है। और समीप से भी समीप है, उसके प्रत्यक्ष होने पर इस जीव के हृदय की अविद्या और संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और जो अशुभ कर्म ईश्वर साक्षात्कार में बाधक हैं, वे क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

योग विषय

मानव जीवन में दो मार्ग मुख्य हैं : - योग और यज्ञ। योग मनुष्य स्वयं के लिए करता है और यज्ञ सारे समाज के लिए। अब हम यहां उपर्युक्त दर्शन के आधार पर योग का विवेचन करते हैं :-

योग में संसार के भोगों से विरक्ति एवं ईश्वर से अनुरक्ति की जाती है। बताया है कि - योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को नियंत्रण में रखने से ही मन पर नियंत्रण होकर साधना बन जाती है। गीता में भी आया है -

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(गीता 6.17)

अर्थात् - जिसका आहार-विहार नियमित हो, जिसकी कर्म चेष्टायें नियमित हों, जिसका सोना और जागना नियमित हो, योग ऐसे व्यक्ति में इस प्रकार का अनुशासित जीवन भर देता है, जिससे वह उसके दुःख दूर कर देता है।

युक्त आहार - भोजन अधिक नहीं करना चाहिये और कभी-कभी उपवास भी करना चाहिये।

योग के 8 अंग बताये होते हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि। योगांगों का अभ्यास करते - करते

मनुष्य अंतिम स्थिति समाधि तक पहुंचकर ईश्वर के निकट पहुंच पाते हैं।

यम : इसके पांच भाग हैं :-

“अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।”

1. **अहिंसा** : मन - वचन - कर्म से किसी को किसी भी प्रकार से पीड़ा नहीं पहुंचाना अहिंसा है। इसमें हिंसा का पूर्णतः परित्याग करना होता है।
2. **सत्य** : जो देश, काल, परिस्थितियों में बदलता नहीं है, सत्य को कहना, करना, मानना और असत्य से पूर्णतया पृथक् रहना योग के लिए आवश्यक है।
3. **अस्तेय** : चोरी न करना। यहां तक कि किसी की आज्ञा के बिना किसी चीज को लेने की इच्छा भी न करना, क्योंकि जिस पुरुष ने जिसके सामने एक बार चोरी, जारी, मिथ्या भाषण आदि कर्म किया। उसकी प्रतिष्ठा उसके सामने मृत्यु पर्यन्त नहीं होती। जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करने वाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं।
4. **ब्रह्मचर्य** : बाल्यावस्था, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को नियंत्रण में रखना, जितेन्द्रिय बने रहना अति आवश्यक है। गृहस्थ में भी ऋतुगमी होना। ब्रह्मचर्य के अभाव में मानव जीवन निरर्थक, निर्बल, निष्क्रिय, किसी भी कार्य के लिए अयोग्य रहता है।
5. **अपरिग्रह** : अभिमान आदि दोषों से रहित रहकर आवश्यकता से अधिक संग्रह का त्याग अपरिग्रह है। इन पांचों यमों का पालन

अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिये अन्यथा कोई भी योग साधना नहीं हो सकती।

नियम : इसके पांच भाग हैं :-

‘शौचसन्तोष तपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।’

1. **शौच** : ये दो प्रकार का होता है - बाह्य और अन्तरङ्ग। बाह्य शौच अर्थात् शुद्धि, स्नानादि एवं खाद्य - अखाद्य पदार्थों पर विचार करके उपभोग करने से होती है। अन्तरङ्ग शौच में छल, कपट, द्वेष, पारखण्ड इत्यादि को मन से निकाल देना होता है। चूंकि इस शरीर में हड्डियों के खम्भे हैं, स्नायु रूप रस्सियों से शरीर बंधा हुआ है, मांस और रक्त से लिपा हुआ है, चमड़े से ढका हुआ है, मल - मूत्र से भरा हुआ है, दुर्गन्धयुक्त है, बुढ़ापे व शोक से होने वाले विविध रोगों का घर है। यह विचार कर शरीर से त्याग भावना रखें अर्थात् इसे अपवित्र ही समझें।
2. **संतोष** : संतोष में लोभवृत्ति का त्याग, उपस्थित साधनों से अधिक साधनों की इच्छा न करना संतोष है। उचित मार्ग पर चलते हुए पूर्ण पुरुषार्थ के बाद जो ईश्वर ने दिया है उसमें ही तृप्ति का अनुभव करना संतोष है।
3. **तप** : अपने कर्तव्य का पालन करते हुए सुख - दुःख, लाभ - हानि, सर्दी - गर्मी, मान - अपमान को सहन करना तप कहलाता है। तप का अर्थ आग जलाकर तापना नहीं; जैसे - लोग तप के नाम पर कोई - कोई एक पांव से लम्बे समय तक (ठाड़ेश्वर) अर्थात् खड़ा रह जाता है। कोई धरती में लम्बा - चौड़ा गड्ढा खुदवाकर उसमें रहकर अपने आप को तपस्वी बताता है, कोई जल में डुबकी लगाकर तप का ढोंग करता है। वस्तुतः मेरे

विचार में तो किसी भी अपमान को सहन कर जाना सच्चा तप है। मेरे पिछले जीवन में अपमान को सहन करने की कमी रही है। जबकि सुदामा जब - जब अपने मित्र कृष्ण की प्रशंसा करते थे तो अपनी निर्धनता के कारण उनकी भार्या कृष्ण के पास जाने की हठ करती थी। तर्क करते - करते अन्त में सुदामा ने यह कह दिया कि मैं यदि मेरे मित्र कृष्ण के पास भी गया और उन्होंने मुझसे मिलना पसन्द नहीं किया तो वह मेरा अपमान होगा। मुझ ब्राह्मण ने जीवन में निर्धनता तो सहन की है परन्तु अपमान सहन नहीं किया। जब ब्राह्मणी ने कहा है स्वामि! सच्चा ब्राह्मण वही है जिसको अपमान को भी अमृत की तरह पी जाना आता हो। बस यह बात सुदामा के लग गई और वह कृष्ण जी के पास चला गया। वहां जितना सम्मान मिला वह आपको याद है, इस तीसरे नियम तप को जीवन में उतारना अति अनिवार्य है।

4. स्वाध्यायः सन्मार्ग पर ले जाने वाले, योग एवं साधना को सफल बनाने वाले और मोक्ष तक ले जाने वाले वैदिक साहित्य का स्वाध्याय जीवन पर्यन्त किया जाना चाहिए। स्वाध्याय करने वाला मनुष्य सदैव सब काल में सभी जगह सुखी रहता है। जो साहित्य चरित्रहीनता की तरफ ले जाता है अथवा व्यर्थ समय खराब करता हो, उसका अध्ययन नहीं करना चाहिये। मोक्ष का उपदेश करने वाले शास्त्रों को पढ़ना और ओंकार गायत्री इत्यादि पवित्र मंत्रों को मन में अर्थ सहित जप करना स्वाध्याय कहलाता है।

5. ईश्वर प्रणिधानः जो भी काम किया जावे वह ईश्वरार्पण करते हुए और निष्काम भाव से फल की इच्छा त्याग करके करना चाहिये। ईश्वर प्रणिधान वही कर सकता है, जो प्रत्याहार

की भाँति (जिसका वर्णन हम आगे करेंगे) अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को उनके लक्ष्य एवं प्रिय स्थानों से खींचकर अन्तर्मन में ले जाकर ईश्वर का ध्यान व आराधना करता हो। बिना ईश्वर प्रणिधान के कोई योग साधना नहीं हो सकती। सर्वसमर्पण और निष्काम भावना से ईश्वर प्रणिधान होता है।

हमने ऊपर योग के आठ अंगों में से प्रथम दो अंग यम, नियम का संक्षेप में विवेचन किया है। यह निश्चित जानना चाहिये कि यम / नियम का पालन योग साधना के साथ सामान्य जीवन में भी अनिवार्य है।

आसनः योग का तीसरा भाग आसन है। ईश्वर का ध्यान करते समय दीर्घकाल तक सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है। “स्थिर सुखमासनम्” (योग दर्शन 2.46)। आसनों के सिद्ध न होने तक किसी से योग के अंग, जैसे - प्राणायाम, धारणा आदि नहीं किये जा सकते। यह आसन का प्रथम प्रयोग है। दूसरा प्रयोग शरीर को नीरोग रखने के लिए किया जाता है। इस प्रकार पद्मासन, वीरासन आदि अनेक भेद हैं। नित्य प्रति आसन (व्यायाम) के बिना मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता। जिस प्रकार मनुष्य को भोजन आवश्यक है उसी प्रकार आसन भी शरीर को चलाने के लिए नियमित रूप से करने चाहिएं।

प्राणायामः वैसे तो प्राणायाम अनेक प्रकार के बताये जाते हैं, जैसे - भस्त्रिका, कपालभाति, अनुलोम - विलोम, भ्रामरी आदि। परन्तु महर्षि दयानन्द जी महाराज ने केवल एक ही प्राणायाम का उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश में किया है, जिसका नाम अब नाड़ीशोधन प्राणायाम है। उसमें चार क्रियाएँ होती हैं:- ये हैं रेचक (श्वास बाहर निकाल देना), बाह्य कुम्भक (यथाशक्ति श्वास को बाहर ही रोकना), पूरक (धीरे - धीरे श्वास फैफड़ों में

भरना), पुनः अन्तर्कुम्भक (यथाशक्ति श्वास को अन्दर ही रोकना), तत्पश्चात् दूसरे स्वर से रेचक करना ही नाड़ीशोधक प्राणायाम कहा जाता है। इसमें कोई सदेह नहीं है कि प्राणायाम से स्वास्थ्य लाभ तो होता ही है और आयु बढ़ती है। आसन और प्राणायाम से मनुष्य नीरोग रहता है और ईश्वर की तरफ मैत्री का हाथ भी बढ़ता है।

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि : इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों के स्थानों से खींचकर अन्तर्मन की तरफ लाने को प्रत्याहार कहते हैं। इस तरह ऊपर दिये गये - यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार यह प्रथम पांच अंग बहिरंग साधन हैं। बाकी तीन अंतरंग साधन हैं। धारणा उनमें पहला है। धारणा - प्रत्याहार करके इन्द्रियों को अपने-अपने विषय से निरोध करके एक स्थान पर स्थिर करना है। धारणा के अभ्यास से मनुष्य ध्यान की तरफ अग्रसर होता है। ध्यान द्वारा चित्त को एकाग्र करके असीम आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। अन्त में, ईश्वर चिंतन करके समाधि दशा को प्राप्त किया जा सकता है।

यज्ञ विषय

यज्ञ पांच प्रकार के होते हैं : - (1) ब्रह्मयज्ञ, (सन्ध्या) (2) देवयज्ञ (हवन) (3) पितृयज्ञ (अपने बड़ों की सेवा) (4) अतिथि यज्ञ (5) बलिवैश्वदेव यज्ञ।

1. ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या) :- मनुष्य को प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये, क्योंकि ईश्वर ने हमें मनुष्य जन्म, वायु, प्रकाश, जल अन्यान्य और खाने-पीने की वस्तुएँ तथा अनेक प्रकार के कार्य करने वाले हमारे अंग हमको हमारे किन्हीं अच्छे कर्मों से प्रदान किये हैं। अतः उस प्रभु को संध्या द्वारा कोटिशः धन्यवाद

करके अहसान व्यक्त करना चाहिये। संध्या में ज्ञान, कर्म, उपासना व ध्यान भी हो जाता है।

2. देवयज्ञ (हवन) :- इसके द्वारा हवन सामग्री तैयार करके जो आहुतियां दी जाती हैं, उनसे आत्म शान्ति मिलती है और सूक्ष्म - कणों द्वारा अग्नि से जो दूर - दूर तक सुगंधित, रोगनाशक, शक्तिवर्धक अणु पहुंचते हैं, उनसे वायुमण्डल शुद्ध होता है जिससे सबको लाभ मिलता है, परोपकार होता है। देवयज्ञ में तीन विशेष बातें भी होती हैं -

प्रथम - देवपूजा अर्थात् उस जगत् पिता परमात्मा, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान का मानसिक पूजन होता है।

दूसरा - दान अर्थात् अग्नि में विभिन्न प्रकार की सामग्री की आहुतियां प्रदान करने से जो स्वयं को, परिवार को व दूरवालों को उपर्युक्त प्रकार से लाभ मिलते हैं, वह देवयज्ञ में दान कहा जाता है।

तीसरा संगतिकरण - संगतिकरण का अर्थ है - संघटन। अनेक वस्तुओं द्वारा हवन सामग्री, अनेक विद्वानों की संगत, उनके प्रवचन के कारण ज्ञानवर्धन वेद मंत्रों का उच्चारण होता है, इससे ज्ञान करने के साथ उपासना भी होती रहती है।

इस प्रकार देवयज्ञ अधिक से अधिक जितनी बार किया जा सके, अपना कर्तव्य समझ कर किया जाना चाहिये। जिस प्रकार महर्षि दयानंद जी ने लिखा है कि “वेद का पढ़ना - पढ़ाना, सुनना - सुनाना आर्यों का परम धर्म है”। उसी प्रकार देवयज्ञ करना भी आर्यों का परम कर्तव्य है।

3. पितृयज्ञ : अपने जीवित माता - पिता व बड़ों की खान - पान

आदि से सेवा - शुश्रूषा करना पितृयज्ञ माना जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि जीवित पिता से दंगम - दंगा और मरत पिता पहुंचाए गंगा। सच्चा तीर्थ स्थान जीवित माता - पिता की सेवा ही है।

4. अतिथियज्ञ : जब कोई मेहमान जिसकी कोई तिथि न हो 'अतिथि' आ जावे तो उसको सेवा द्वारा संतुष्ट करना यज्ञ के समान है।

5. बलिवैश्वदेवयज्ञ : जैसे गाय, कुत्तों, चिड़िया, चीटियां आदि इत्यादि को खाना - दाना देकर उनकी सेवा करना बलिवैश्वदेवयज्ञ कहलाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन द्वारा योग व यज्ञ का विधान किया गया है, जिसका अनुपालन श्रीराम व श्रीकृष्ण जी के परिवारों ने किया था। जिससे युगों से आज तक हमको प्रेरणाएं मिल रही हैं।

मनुष्य का परम लक्ष्य : आत्मदर्शन

वैदिक संस्कृति का सार यह है कि व्यक्ति इस संसार में धन - ऐश्वर्य अर्जित करके भोग विलास में ही न पड़ा रहे। धन से प्राप्त सुख - सुविधाओं का उपभोग करता हुआ आत्मसाक्षात् करके मोक्ष प्राप्त करे। इस विषय में बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4 में एक प्रसंग आता है - महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थी - गार्गी और मैत्रेयी। जब ऋषि गृहस्थ के दायित्व से मुक्त हुए तब उन्होंने सन्न्यास आश्रम में जाने का विचार किया। ऋषि ने दोनों पत्नियों को बुलाया और कहा - कि मैं सन्न्यास आश्रम में जाने से पहले अपनी सम्पत्ति को तुम दोनों के बीच बांटना चाहता हूँ। जिससे बाद में तुम दोनों में किसी प्रकार का कलह न हो। मैत्रेयी ने पूछा - महाराज - "यन्नु इयं सर्वा पृथिवी वित्तेनपूर्णस्यात्

"कथं तेनाहं अमृता स्याम" अगर धनधान्य से परिपूर्ण यह समस्त पृथिवी मुझे मिल जाये तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया "यथैव उपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यात् अमृतत्वस्य तु न - आशा - अस्ति वित्तेन" नहीं, जैसा जीवन साधनसम्पन्न व्यक्ति जीते हैं उसी प्रकार का तेरा जीवन रहेगा। अमर आनन्द की प्राप्ति धन से नहीं होती। यह सुनकर मैत्रेयी ने जो उत्तर दिया वह धन के पीछे भागने वालों के लिए एक पाठ है। उसने कहा - येन - अहं न अमृता स्यां किम् अहं तेन कुर्याम् - जिसको प्राप्त करके मुझे अमृत पद न मिले, उसे लेकर मैं क्या करूँगी?

इसके बाद याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को सांसारिक सम्बन्धों की वास्तविकता बताते हुए कहा -

न वा अरे पत्युः कामाय पति प्रियो भवति।
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति॥

पति इसलिए प्यारा नहीं लगता कि वह पति है। अपितु अपनी इच्छायें उससे पूरी होती हैं। इसी कारण वह प्रिय लगता है।

न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रियो भवति।
आत्मनस्तु कामाय जाया प्रियो भवति॥

पत्नी इसलिए प्रिय नहीं लगती कि वह मेरी पत्नी है, अपितु अपनी इच्छा उससे पूरी होती है। इस कारण प्रिय लगती है।

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति।
आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति॥

पुत्र - पुत्रियां इसलिए प्रिय नहीं लगते कि वे हमारे

पुत्र - पुत्रियां हैं अपितु इसलिए प्रिय लगते हैं कि हमारी इच्छायें पूरी करते हैं।

**न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियो भवति।
आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति॥ आदि....**

धन इसलिए प्रिय नहीं लगता कि वह धन है, अपितु इसलिए प्रिय लगता है कि अपनी इच्छायें उससे पूर्ण होती हैं। इसी प्रकार संसार में अन्य भी जितने सम्बन्ध एवं पदार्थ हैं, वे तभी किसी को प्रिय लगते हैं जब तक उनसे कामनायें पूरी होती हैं। संसार में हम देखते हैं कि अनके माता - पिता, पति - पत्नी, पुत्र - पुत्रियां, भाई - बहन, बन्धु - बान्धव, सगे - सम्बन्धी जीवत होते हुए भी एक - दूसरे के दर्शन नहीं करना चाहते। मृत्यु के बाद प्रिय से प्रिय व्यक्ति के शव को कोई घर में नहीं रखता और समय व्यतीत होने के साथ - साथ उसके दुःख को भी भूल जाते हैं। मकान में आग लगने पर कोई भी आग में कूदकर सोना - चान्दी, हीरे - जवाहारात आदि बहुमूल्य पदार्थों को बचाने का दुःसाहस नहीं करता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब तक कोई सम्बन्धी अथवा भौतिक पदार्थ किसी की इच्छायें पूरी करता है वह तभी तक प्रिय लगता है। जब इच्छाओं के विपरीत कार्य करते हैं तो वे ही सम्बन्धी शत्रु दीखने लगते हैं।

अंत में याज्ञवल्क्य ऋषि मैत्रेयी से कहते हैं कि :-

“आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्याः।

**मैत्रेयी - आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन
विज्ञानेन - इदं सर्वं विदितम्”**

(बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4.5)

हे देवी! इस आत्मा के ही दर्शन करने चाहिए, आत्मा के विषय में ही सुनना चाहिए, मनन करना चाहिए एवं आत्मा का ही ध्यान करना चाहिए। हे मैत्रेयी! आत्मा के देखने, सुनने और जानने से सब रहस्य खुल जाते हैं।

वेद वाटिका के पुष्प ऋग्वेद

- 1. मनुर्भव।** (10.53.6) हे मानव! तू सच्चे अर्थों में मानव बन।
- 2. अक्षैर्मादीव्यः।** (10.34.13) जुआ मत खेलो।
- 3. एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।** (1.164.46) उस एक प्रभु को विद्वान् लोग अनेक नामों से पुकारते हैं।
- 4. एको विश्वस्य भुवनस्य राजा।** (6.36.4) वह सब लोकों का एकमात्र स्वामी है।
- 5. संगच्छध्वं संवदध्वम्।** (10.191.2) मिलकर चलो और मिलकर बोलो।
- 6. शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः।** (4। 49। 1) शुद्ध और पवित्र बनो तथा परोपकारमय जीवन वाले हो।
- 7. कृणवन्तो विश्वमार्यम्।** (9.63.5) संसार को आर्य - श्रेष्ठ बनाओ।
- 8. न स सखा यो न ददाति सख्ये।** (10.117.4) वह मित्र ही क्या, जो अपने मित्र को सहायता नहीं देता।
- 9. सुगा ऋतस्य पन्थाः।** (8.3 1.13)

- सत्य का मार्ग सुख से गमन करने योग्य, सहज है।
10. ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः। (9.73.6)
सत्य के मार्ग को दुष्कर्मी पार नहीं कर पाते।
11. स्वस्ति पन्थामनुचरेम। (5.51.15)
हम कल्याण मार्ग के पथिक हों।
12. दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते। (1.125.6)
दानी अमर - पद प्राप्त करते हैं।
13. देवानां सरव्यमुपरेदिमा वयम्। (1.89.2)
हम देवों (विद्वानों) की मैत्री करें।
14. समाना हृदयानि वः। (10.191.4)
तुम्हारे हृदय (मन) एक - से हों।
15. केवलाधो भवति केवलादी। (10.117.6)
अकेला भोग करने वाला पाप का भोग करता है।
16. अकर्मा दस्युर अभितो अमन्तुर अन्यवतो अमानुषः। (10.22.8)
कर्महीन, आलसी मानवीय गुणों से रहित मनुष्य दस्यु कहलाता है।
17. न ऋते श्रान्तस्य सरव्याय देवाः। (4.33.11)
बिना स्वयं परिश्रम किये देवों की मैत्री नहीं मिलती।
18. उप सर्प मातरं भूमिम्। (10.18.10)
मातृभूमि की सेवा कर।
19. न देवानामति वतं शतात्मा च न जीवति। (10.33.9)
देवताओं के नियम को तोड़कर कोई सौ वर्ष नहीं जी सकता।

20. सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्। (9.73.1)
धर्मात्मा को सत्य की नाव पार लगाती है।
21. यतेमहि स्वराज्ये। (5.66.6)
हम स्वराज्य के लिए सदा यत्न करें।
22. अहमिन्द्रो न पराजिये। (10.48.5)
मैं आत्मा हूँ, मुझे कोई हरा नहीं सकता।
23. भद्रं - भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि। (1.123.13)
हे प्रभो! हम लोगों में सुख और कल्याणमय उत्तम संकल्प, ज्ञान और कर्म को धारण कराओ।
24. उद्बुध्यध्वं समनसः सरवायः। (10.101.1)
हे एक विचार और एक प्रकार के ज्ञान से युक्त मित्र जनों, उठो! जागो!!
25. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। (8.2.18)
देवता, पुरुषार्थी को चाहते हैं, आलसी से प्रेम नहीं करते।
- ### यजुर्वेद
1. भद्रं कर्णभिः शृणुयाम। (25.21)
हम कानों से सदा भद्र - मंगलकारी वचन ही सुनें।
2. स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु। (3.2.8)
वह व्यापक प्रभु सब प्रजाओं में ओत - प्रोत है।
3. पुमान् पुमासं परिपातु विश्वतः। (29.51)
मानव, मानव की सब ओर रक्षा करे।

4. शं नः कुरु प्रजाभ्यः। (36.22)
प्रभु हमारी संतान का कल्याण करो।
5. मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। (40.1)
किसी के धन पर न ललचाओ।
6. सः पर्यगाच्छुक्रम् अकायम् अवणम् अस्नाविरं शुद्धं
अपापविद्धम्। (40.8)
वह ईश्वर सर्वव्यापक है, शुद्ध है, शरीर रहित है, वर्ण रहित है,
स्नायु नस नाड़ी रहित है, शुद्ध है और पाप रहित है।
7. न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः। (32.30)
ईश्वर महान् यशस्वी है, उसकी मूर्ति (प्रतिमा) नहीं बनाई
जा सकती है।
8. सः ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु। (32.8)
वह सर्वव्यापक ईश्वर सब प्राणियों में ओत - प्रोत है।
9. मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (36.18)
हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।
10. वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिताः। (9.23)
हम राष्ट्र की उन्नति के लिए सदा जागरूक रहें।
11. तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा। (31.19)
उस परमात्मा में ही संपूर्ण लोक स्थित हैं।
12. अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्याः। (2.10)
हमारी कामनाएँ सच्ची हों।
13. अहमनृतात्सत्यमुपैमि। (1.5)
मैं झूठ से बचकर सत्य को धारण करता हूँ।

14. यशः श्रीः श्रयतां मयि। (29.4)
यश और ऐश्वर्य मुझमें हों।
15. सुसस्याः कृषीष्कृधि। (4.10)
अच्छे सस्य से युक्त खेती कर।
16. तमेव विदित्वाति मृत्युमेति। (31.18)
उस ब्रह्म (प्रभु) को जानकर ही मनुष्य मृत्यु को लाँघ
जाता है।
17. अस्मा भवतु नस्तनूः। (29.49)
हम अपने शरीर को पाषाण के समान सुदृढ़ बनायें।
18. भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वपनम्। (30.17)
जागना = पुरुषार्थ ऐश्वर्यप्रद है।
सोना = प्रमाद करना दरिद्रता का मूल है।
19. कुर्वन्नेवेह कर्मणि जिजीविषेच्छतं समाः। (40.2)
मनुष्य इस संसार में कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की
इच्छा करे।
20. ऋतस्य पथा प्रेत। (7.45)
सत्य के मार्ग पर चलो।
21. अदीनाः स्याम शरदः शतम्। (36.24)
हम सौ वर्षों तक दीनतारहित होकर जीयें।
22. पश्येम शरदः शतम्। (36.24)
हम सौ वर्षों तक देखते रहें।
23. तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। (64.1)
मेरा मन उत्तम संकल्पों वाला हो।
24. अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः। (19.77)
प्रभु ने झूठ में अश्रद्धा को और सत्य में श्रद्धा को रखा है।

अथर्ववेद

1. तस्य ते भक्तिवांसः स्याम। (6.79.3)
हे प्रभो! हम तेरे भक्त हों।
2. स एष एक एकवृदेक एव। (13.5.7)
वह ईश्वर एक और सचमुच एक ही है।
3. एक एव नमस्यो विक्षीडयः। (2.2.1)
एक परमेश्वर ही पूजा के योग्य और प्रजाओं में स्तुत्य है।
4. स नो मुञ्च्यत्वंहसः। (4.23.1)
वह ईश्वर हमें पाप से मुक्त करे।
5. तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः। (10.8.44)
उस आत्मा को ही जान लेने पर मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता।
6. य इत् तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः। (9.10.1)
जो उस ब्रह्म को जान लेते हैं, वे मोक्षपद पाते हैं।
7. सं श्रुतेन गमेमहि। (1.1.4)
हम वेदोपदेश से युक्त हों।
8. रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्। (7.115.4)
पुण्य की कर्माई मेरे घर की शोभा बढ़ाये, पाप की कर्माई को मैंने नष्ट कर दिया है।
9. प्रियं मा कृणु देवेषु। (19.62.1)
हे परमात्मा! मुझे ब्रह्मज्ञानी विद्वानों में प्यारा बनाओ।
10. अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः। (3.3 0.2)
पुत्र माता - पिता के अनुकूल व्यवहार करे।

11. मा जीवेभ्यः प्रमदः। (8.1.7)
प्राणियों की ओर से बेपरवाह मत हो।
12. अयज्ञियो हतवर्चा भवति। (12.2.3 7)
यज्ञहीन का तेज नष्ट हो जाता है।
13. सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु। (19.15.6)
सभी दिशाएँ हमारे लिए हितकारिणी होवें।
14. वयं देवानां सुमतौ स्याम। (6.47.2)
हम विद्वान् पुरुषों की शुभमति में (उत्तम उपदेशों के अनुसार) रहें।
15. आ रोह तमसो ज्योतिः। (8.1.8)
अन्धकार (अविद्या) से निकलकर (ऊपर उठकर) प्रकाश (ज्ञान) की ओर बढ़ो।
16. यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः। (9.10.14)
यज्ञ ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का बाँधने वाला नाभिस्थान है।
17. उद्यानं ते पुरुष नावयानम्। (8.1.6)
पुरुष (मर्द)! तेरे लिये ऊपर उठना है, न कि नीचे गिरना।
18. मा नो द्विक्षत कश्चन। (12.1.24)
हमसे कोई भी द्वेष करने वाला न हो।
19. सम्यज्य सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया। (3.30.3)
समान गति, समान कर्म, समान ज्ञान और समान नियम वाले बनकर परस्पर कल्याणी वाणी से बोलो।
20. मा मा प्रापत पाप्मा मोत मृत्युः। (17.1.21)
मुझे पाप और मौत न व्यापे।

21. अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्।
(6.78.2)
मनुष्य दुग्धादि पदार्थों से बढ़ें और राज्य से बढ़ें।
22. अरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः।
(5.3.5)
हम शरीर से नीरोग हों और उत्तम वीर बनें।
23. आरोहणमाकमणं जीवतो जीवतो यनम्।
(5.30.7)
उन्नत होना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है।
24. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाधन्त।
(11.7.19)
ब्रह्मचर्यरूपी तपोबल से ही विद्वान् लोगों ने मृत्यु को जीता है।
25. कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
(7.52.8)
मेरे दाहिने हाथ में कर्म- पुरुषार्थ है और सफलता बायें हाथ में रखी हुई है।
26. मधुमतीं वाचमुदेयम्।
(16.2.2)
मैं मीठी बाणी बोलूँ।
27. मा भाता भातरं द्विक्षन्मा स्वासरमुत स्वसा।
(3.30.3)
भाई, भाई से और बहन, बहन से द्वेष न करें।
28. सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।
(19.5.6)
सब दिशाओं के प्राणी मेरे मित्र हो जायें।
29. इन्द्र उच्चरतः सरवा।
(ऐतरेय ब्राह्मणम् 33.1)

- ईश्वर पुरुषार्थी का साथी है।
- 3 0. यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।
(शतपथ ब्रह्मणम् 1.7.1.5)
यज्ञ सर्वश्रेष्ठ कर्म है।
- 3 1. माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
(12.1.12)
भूमि मेरी माता है और मैं उस मातृभूमि का पुत्र हूँ।
- 3 2. सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम।
(6.117.3)
हम लोग ऋण रहित होकर परलोक के सभी मार्गों पर चलें।
- 3 3. वाचा वदामि मधुमद्।
(1.34.3)
मैं वाणी से माधुर्य युक्त ही बोलता हूँ।
- 3 4. ज्योगेव दृशेम सूर्यम्।
(1.31.4)
हम सूर्य को बहुत काल तक देखते रहें।
- 3 5. मा पुरा जरसो मृथाः।
(5.30.17)
हे मनुष्य! तू बुढ़ापे से पहले मत मर।
- 3 6. शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
(3.24.5)
सैकड़ों हाथों से इकट्ठा करो और हजारों हाथों से बाँटो।
- 3 7. परैतु मृत्युरमृतं न एतु।
(18.3.62)
मृत्यु हमसे दूर हो और अमृत- पद हमें प्राप्त हो।
- 3 8. सर्वमेव शमस्तु नः।
(19.9.14)
हमारे लिये सब कुछ कल्याणकारी हो।
- 3 9. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
(5.1.7)
ब्रह्मचर्यरूप तप के द्वारा राजा राष्ट्र का संरक्षण करता है।

40. शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु। (19.9.13)

मुझे कल्याण की प्राप्ति हो और किसी प्रकार का भय न हो।

41. शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम्। (6.71.3)

मेरे लिये अन्न कल्याणकारी और स्वादिष्ट हो।

कालमहत्त्वम्

न श्वः शवमुपासीत को हि मनुष्यस्य श्वो वेद॥

(शतपथ ब्राह्मणम् 1.2.1.4)

अर्थ - मैं कल कर लूंगा। इस प्रकार कल की प्रतीक्षा न करें, क्योंकि कौन ऐसा है जो मनुष्य के कल को जानता हो।

परमेश्वर के सौ नाम और सत्यार्थ प्रकाश

महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में परमेश्वर के सौ नामों की व्याख्या की है। आओ हम इन सौ नामों से परिचित हो जाएं।

परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम ओऽम् है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक ओऽम् समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे - अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि; उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तेजसादि; मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल में सब नाम परमेश्वर के हैं।

परमेश्वर के नाम, रक्षा करने से ओऽम्¹, आकाशवत् व्यापक होने से खम्² और सबसे बड़ा होने से ब्रह्म³ हैं। परमेश्वर के स्वप्रकाश होने से अग्नि⁴, विज्ञानस्वरूप होने से मनु⁵, सबका पालन करने से प्रजापति⁶ और परमैश्वर्यवान् होने से इन्द्र⁷, सबका जीवनमूल्य होने से प्राण⁸, सब जगत् के बनाने से ब्रह्मा⁹, सर्वत्र व्यापक होने से विष्णु¹⁰, दुष्टों को दण्ड दे के रुलाने से रुद्र¹¹, मंगलमय और सबका कल्याणकर्ता होने से शिव¹²।

अक्षर¹³ - जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी, स्वराट्¹⁴ - स्वयं प्रकाश स्वरूप कालाग्नि¹⁵ - प्रलय में सबका काल और काल का भी काल है। दिव्य¹⁶ - जो प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त, सुपर्ण¹⁷ जिसके उत्तम पालन और पूर्ण कर्म हैं। गुरुत्मान्¹⁸ - जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् है। मातरिश्वा¹⁹ - जो वायु के समान अत्यन्त बलवान् है। भू²⁰, भूमि²¹, अदिति²², विश्वधाया²³, विराट्²⁴, विश्व²⁵, हिरण्यगर्भ²⁶, वायु²⁷, तेजस²⁸, ईश्वर²⁹, आदित्य³⁰, प्राज्ञः³¹, मित्र³², वरुण³³, अर्यमा³⁴, बृहस्पति³⁵, उरुक्रम³⁶, सूर्य³⁷, परमात्मा³⁸, परमेश्वर³⁹, सविता⁴⁰।

जो सबमें व्याप्त और जानने योग्य है, इससे परमेश्वर का नाम देव⁴¹ है। कुबेर⁴², पृथिवि⁴³, जल⁴⁴, आकाश⁴⁵, अन्न⁴⁶, अन्नाद⁴⁷, वसु⁴⁸, नारायण⁴⁹, चन्द्र⁵⁰, मंगल⁵¹, बुध⁵², शुक्र⁵³, शैनेश्चर⁵⁴, राहु⁵⁵, केतु⁵⁶, यज⁵⁷, होता⁵⁸, बंधु⁵⁹, पिता⁶⁰, माता⁶¹, आचार्य⁶², गुरु⁶³, अज⁶⁴, सत्य⁶⁵, ज्ञान⁶⁶, अनन्त⁶⁷, अनादि⁶⁸, आनन्द⁶⁹, नित्य⁷⁰।

जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम निराकार⁷¹ है। निरंजन⁷², गणेश⁷³, गणपति⁷⁴, विश्वेश्वर⁷⁵, कूटस्थ⁷⁶, शक्ति⁷⁷,

श्री⁷⁸, लक्ष्मी⁷⁹, सरस्वती⁸⁰, सर्वशक्तिमान्⁸¹, न्यायकारी⁸², दयालु⁸³, अद्वैत⁸⁴, निर्गुण⁸⁵, सगुण⁸⁶, अन्तर्यामी⁸⁷, धर्मराज⁸⁸, यम⁸⁹, भगवान्⁹⁰।

जो सब जगत में पूर्ण हो रहा है, इसलिए इस परमेश्वर का नाम पुरुष⁹¹ है। विश्वम्भर⁹², काल⁹³, शेष⁹⁴, आप्त⁹⁵, शंकर⁹⁵, महादेव⁹⁷, प्रिय⁹⁸, स्वयम्भू⁹⁹ और कवि¹⁰⁰।

ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं। परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं, क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म, स्वभाव का एक-एक नाम है।

महर्षि आगे लिखते हैं, ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत हैं। क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव, व्याख्यात किए हैं। उनके पढ़ने-पढ़ाने से बोध हो सकता है और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा-पूरा हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं। अतः हम सरलता से जान सकते हैं कि परमेश्वर के कौन-कौन से नाम किन-किन गुणों के कारण हैं। प्रत्येक नाम की पूर्ण जानकारी सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम सम्मुल्लास में पढ़ी जा सकती है।

सत्यार्थ प्रकाश – सत्यार्थ प्रकाश के पूर्वार्द्ध में दस तथा उत्तरार्द्ध में चार सम्मुल्लास हैं। द्वितीय सम्मुल्लास में बाल शिक्षा विषय, भूत प्रेतादि, खण्डन फलित-ज्योतिष निराकरण, मारण मोहन यन्त्र, मन्त्र, तत्र खण्डन तथा वीर्य रक्षा आदि हैं। तृतीय सम्मुल्लास में अध्ययनाध्यापन विषय, यज्ञोपवीत संस्कार, सहशिक्षा निषेध, सन्ध्योपासना, ब्रह्म यज्ञ, देवयज्ञ एवं स्त्री शूद्र को विद्याधिकार आदि है। चतुर्थ में गृहस्थाश्रम, पंचम में वानप्रस्थ

एवं सन्यास विधि, छठे में राजधर्म विषय, सातवें में ईश्वर विषय, आठवें में सृष्टि प्रयोजन, नौवें में विद्या-अविद्या, मोक्ष आदि, दसवें में आचार-अनाचार, भक्ष्य-अभक्ष्य आदि विषय विस्तार से समझाए हैं। ग्यारहवें सम्मुल्लास में आर्यव्रत का गौरव, आर्यों का चक्रवर्ती राज्य आदि, बारहवें में नास्तिक मत, चार्वाकमत समीक्षा, बौद्ध मत, जैन मत आदि, तेरहवें में कृश्चीनमत समीक्षा, चौदहवें में यवनमत विषय समीक्षा आदि है।

वास्तव में सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ एक सागर है, जिसने इसमें गहरे पैठ मोती चुने, उसे मिले। यह एक ऐसी पुस्तक है जो मनुष्य के सभी भ्रमों को मिटाकर उसे संसार की जानकारियां देती है।

ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश लिखने का उद्देश्य इस प्रकार बताते हैं – ‘मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है’

सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर गुरुदत्त विद्यार्थी ने कहा था कि – ‘सत्यार्थ प्रकाश की एक प्रति चन्द आने में मिल जाती है पर यदि इसका मूल्य अधिक होता तो मैं अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी इसे खरीदता। मुझे यह ग्रन्थ इतना प्रिय है कि इसे खरीदने के लिए गले में झोली डालकर चन्दा मांगने के लिए भी तैयार हूँ।

ई, 1874 ई० में महर्षि दयानन्द पांचवीं बार काशी गये। वहाँ पर मुरादाबाद के राजा जयकृष्ण दास बहादुर सी. एस. आई. डिप्टी कलेक्टर थे। उन्होंने महर्षि जी से निवेदन किया कि आपके भाषण से वे ही लोग लाभ उठा पाते हैं जो सुनते हैं। यदि आप अपने विचारों को लिख कर छपवा दें तो उनको भी लाभ

होगा जो आपके भाषण सुन नहीं पाते। राजा जयकृष्णदास ने स्वयं इसे लिखवाने एवं छपवाने की व्यवस्था का भार अपने ऊपर लिया। स्वामी जी की स्वीकृति के बाद राजा साहब ने महाराष्ट्र प्रांत के पण्डित चन्द्रशेखर को महर्षि दयानन्द के विचार लिखने के लिए नियुक्त कर दिया। 12 जून, 1874 शुक्रवार (प्रथम आषाढ़ बदि 13, संवत् 1931 विक्रमी) को सत्यार्थ प्रकाश लिखवाना प्रारम्भ किया, महर्षि जी बोलते जाते थे और पण्डित चन्द्रशेखर लिखते जाते थे। सितम्बर मास के अन्त तक यह ग्रन्थ पूर्ण हो गया। इस प्रकार चौदह सम्मुलास का यह बृहत्काय ग्रन्थ साढ़े तीन महीने में लिख दिया गया। इस ग्रन्थ में सभी वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, दर्शन, स्मृति ग्रन्थ, महाभारत, गीता, पुराण, सूत्र ग्रन्थ, श्रोत सूत्र, गृह्य सूत्र, बाइबिल, कुरान, जैन ग्रन्थ आदि 377 ग्रन्थों के 1542 उद्धरण हैं। यह महर्षि दयानन्द के मस्तिष्क का चमत्कार ही कहा जायेगा कि बिना पुस्तकालय की सहायता के सभी शास्त्रों को निचोड़ को प्रस्तुत करने वाला, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक क्रान्ति का सूत्रधारात्मक यह ग्रन्थ स्मृति के आधार पर लिखवा दिया। कार्लमार्क्स ने (द कैपिटल) नामक ग्रन्थ इंग्लैण्ड में बैठकर चौंतीस वर्ष में पूरा किया था।

वैदिक धर्म के सिद्धान्त

- वेद ईश्वर की पवित्र वाणी है। वेद का ज्ञान हमारी सभ्यता और संस्कृति का आधार है। संसार के समस्त नर-नारी वेद पढ़ने के अधिकारी हैं।
- सृष्टि के आदि में ईश्वर ने चार ऋषियों की आत्मा को अर्थात् अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, वायु ऋषि को यजुर्वेद, आदित्य ऋषि को सामवेद और अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद का ज्ञान दिया।

3. वैदिक धर्म के दस लक्षण हैं -

- (क) धृति - अपने में धैर्य, संतोष, इत्यादि गुणों को धारण करना।
 - (ख) क्षमा - सर्वदा द्वेष तथा बदले की भावना को त्यागना।
 - (ग) दम: - मानसिक इच्छाओं को वश में करना।
 - (घ) अस्तेय - चतुराई, धोखा, छल-कपट, झूठ, अनुचित ढंग तथा भ्रष्टाचार से धन को न हथियाना।
 - (ङ) शौच - आचार-विचार, व्यवहार, मन, वाणी व दृष्टि से शुद्धता रखना।
 - (च) इन्द्रिय निग्रह - अपनी कर्म तथा ज्ञान इन्द्रियों को वश में रखना।
 - (छ) धीः (बुद्धि) - विवेकशीलता से कार्य करना।
 - (ज) विद्या - पृथक्षी से लेकर ईश्वर तक सभी पदार्थों का विवेकपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना तथा उचित लाभ लेना।
 - (झ) सत्य - गुण, कर्म, स्वभाव को सत्य बनाना।
 - (ज) अक्रोध - क्रोध को एक भयानक शत्रु समझते हुए इस पर सहनशक्ति से नियन्त्रण रखना।
- ईश्वर का सर्वोत्तम व निज नाम ओऽम् है।
 - वैदिक धर्म के अनुसार, ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी,

- अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करने योग्य है।
6. ईश्वर कभी किसी मनुष्य, मत्स्य, कछवा आदि का शरीर धारण करके अवतार नहीं लेता। ईश्वर की मूर्ति नहीं बनायी जा सकती। ईश्वर के स्थान पर किसी देवी-देवता या श्री रामचन्द्र जी आदि की मूर्ति बनाकर पूजा करना वेद विरुद्ध है।
 7. वैदिक धर्मानुसार सारी सृष्टि की उत्पत्ति त्रैतवाद के सिद्धान्त पर आधारित है—ईश्वर, जीव, प्रकृति—ये तीनों पदार्थ अनादि तथा अनन्त हैं।
 8. जीव जो विशेष सुख की सामग्री को प्राप्त करता है, वह स्वर्ग कहलाता है और जीव जो विशेष दुख तथा दुरुख की सामग्री को प्राप्त करता है, उसे नरक कहते हैं।
 9. ईश्वर और जीव का आपस में उपास्य-उपासक, पिता-पुत्र, राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक जैसा सम्बन्ध है।
 10. जीव अल्पज्ञ है तथा परमात्मा सर्वज्ञ है।
 11. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—जो मनुष्य जिस प्रकार अपने गुण, कर्म, स्वभाव बनाता है वह उसी वर्ण का हो जाता है।
 12. सच्चा तीर्थ—सत्संग, स्वाध्याय, ईश्वर भक्ति, माता-पिता आदि बड़ों की सेवा, ब्रह्मचर्य, धर्म अनुकूल कर्म व अपने जीवन को पवित्र बनाना है।
 13. वैदिक धर्म के अनुसार, प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन

- के कल्याण के लिए नित्य प्रति पाँच यज्ञ अवश्य करने चाहिए—ब्रह्म यज्ञ (ईश्वर की भक्ति संन्ध्या—उपासना), अग्नि होत्र यज्ञ, पितृ यज्ञ (जीवित मां-पिता, दादा-दादी आदि की सेवा), बलिवैश्वदेव यज्ञ (दीन-दुखियों, अनाथों एवं गौ, कुत्ता आदि प्राणियों को अन्नदान) और अतिथि यज्ञ।
14. प्रत्येक मानव के शारीरिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए 16 संस्कार अवश्य किए जाने चाहिए।
 15. मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, इसलिए मनुष्य पुरुषार्थ द्वारा अपने प्रारब्ध का निर्माता है।
 16. जीवित माता-पिता आदि पितरों की श्रद्धा एवं भोजन वस्त्र आदि से सेवा करना ही श्राद्ध व पितृ तर्पण है। मृत्यु के बाद श्राद्ध व तर्पण का वेद में विधान नहीं है।
 17. ईश्वर न्यायकारी है। वह बिना किसी भेदभाव के सब मनुष्यों को प्रत्येक कर्म का फल न्यायपूर्वक देता है। किसी भी प्रकार का उपाय कर्मफल को नहीं बदल सकता। पुण्य कर्म का फल सुख और पाप कर्म का फल दुःख रूप में मिलता है।
 18. महर्षि दयानन्द ने संसार के मनुष्यों के कल्याण के लिए ईश्वरीय ज्ञान वेद के प्रचार से सब मनुष्यों को एकता व प्रेम के दृढ़ सूत्र में पिरोने के लिए आर्य समाज को बनाया जो वेद का प्रकाश फैला कर सत्य मार्ग दिखलाता है।
 19. गणित ज्योतिष का हमारे जीवन के सब कार्यों से सम्बन्ध है। फलित ज्योतिष का लेश भी सम्बन्ध नहीं है।
 20. वेद के अनुसार जीवत्मा को यम, नियमों का पालन करके,

ईश्वर की शुद्ध रूप में उपासना करके अविद्या के नाश होने पर मुक्ति मिल जाती है। मुक्ति का काल 31 नील, 10 खंब, 40 अख वर्षों का है। इतने काल तक जीव सब प्रकार के दुःखों से छूटकर केवल परमानन्द का ही अनुभव करता है। इसके बाद पुनः मनुष्य का जन्म मिलता है।

महर्षि दयानन्द जी के जीवन की मुख्य - मुख्य घटनाएं

- 1824 ई. में टंकारा नगरी (मोर्वा) गुजरात राज्य में जन्म।
- 1832 ई. में उपनयन संस्कार हुआ।
- 1835 ई. में शिव मन्दिर में रात्रि जागरण, मूषक का शिवलिंग पर चढ़ना। मूर्तिपूजा से विश्वास का उठना।
- 1842 ई. में बहिन व मामा की मृत्यु से मृत्यु पर विजय पाने के लिए चिन्तित रहना।
- 1846 ई. में गृहत्याग। पहले शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी फिर दयानन्द सरस्वती नाम पाकर संन्यासी बने। योगियों की खोज में लम्बी - लम्बी यात्राएं।
- 1860 ई. में गुरु विरजानन्द जी के द्वार पर मथुरा नगरी पहुँचे।
- 1863 ई. में गुरु विरजानन्द से वैदिक ज्ञान प्राप्त कर विदा हुए। अज्ञान को दूर करके, सद्ज्ञान के प्रसार का संकल्प लिया।
- 1863 ई. में आगरा पधारे। दो वर्ष लक्ष्य सिद्धि के लिए तैयारी।
- 1867 ई. में हरिद्वार के कुम्भ मेले पर पाखण्ड खण्डनी पताका फहराई।
- 1868 ई. में राव कर्ण सिंह का ऋषि पर तलवार से प्राण धातक प्रहार। अपने भुजाबल से ऋषि ने तलवार तोड़ दी।

1869 ई. में काशी के राजा ईश्वर नारायण सिंह की अध्यक्षता में प्रतिमा पूजन पर ऐतिहासिक शास्त्रार्थ।

1872 ई. में बंगाल व 1874 ई. में बम्बई प्रदेश की यात्राएं।

1875 ई. में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना, इसी वर्ष सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ का प्रकाशन व ऋषि की पूना यात्रा।

1876 ई. में देहली दरबार के अवसर पर एकता सम्मेलन। विभिन्न भारतीय नेताओं से भेंट।

1877 ई. में चांदपुर का ऐतिहासिक शास्त्रार्थ। पंजाब यात्रा तथा लाहौर नगरों में समाज की स्थापना का क्रम चला।

1879 ई. में कुम्भ मेले पर हरिद्वार पधारे।

1879 ई. में काशी में आर्य समाज की स्थापना और वैदिक यन्त्रालय का आरम्भ होना।

1882 ई. में उदयपुर की यात्रा।

1883 ई. में मेवाड़ राज्य में स्वीकार पत्र पंजीकृत करवाया। परोपकारिणी सभा की स्थापना।

1883 ई. में 26 सितम्बर को जोधपुर में विष दिया गया।

1883 ई. में 30 अक्टूबर को अजमेर में निर्वाण।

देव भाषा संस्कृत के चुने हुए जीवनोपयोगी - मोती

धर्म

एक एव सुहद्धर्मो, निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं, सर्वमन्यद्धि गच्छति॥

(मनुस्मृति 8.17)

अर्थ - धर्म ही एक मात्र सच्चा मित्र है जो मृत्यु के पश्चात्

भी मनुष्य के साथ जाता है। अन्य सब कुछ तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता है।

**को हि जानाति कस्याद्य, मृत्युलोको भविष्यति।
युवैव धर्मशीलः स्यादनित्यं खलु जीवितम्॥**

(महाभारत शान्तिपर्व 175)

अर्थ - कौन जानता है कि आज किसकी मृत्यु का समय उपस्थित होगा? अतः मनुष्य युवा अवस्था से ही धार्मिक बनें। क्योंकि यह जीवन निश्चय ही अनित्य है।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवितयौवनम्।

चला चले च संसारे, धर्मा एको हि निश्चलः॥

(वैराग्यशतकम् 119)

अर्थ - यह सम्पत्ति चंचल है और प्राण, जीवन तथा यौवन भी चंचल है। इस चंचल वस्तुओं वाले संसार में एक धर्म ही निश्चल है।

**धर्मो एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो, मा नो धर्मो हतो वधीत्॥**

(मनुस्मृति 8.94)

अर्थ - मारा हुआ धर्म मारने वाले को मार देता है और रक्षा किया हुआ धर्म अपने रक्षक की रक्षा करता है, इसलिए धर्म को नहीं मारना चाहिए। ऐसा न हो कि मारा हुआ धर्म हमें नष्ट कर दे।

विशेष - यहाँ धर्म का अर्थ कर्त्तव्य कर्म है। जो अपने कर्त्तव्य रूप धर्म को छोड़ देता है, वह कष्ट ही कष्ट भोगता है।

**नाधर्मश्चरितो लोके, सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुमूलानि कृन्तति॥**

(मनुस्मृति 4.172)

अर्थ - किया हुआ अधर्म गौ के समान शीघ्र फलित नहीं होता; किन्तु वह धीरे-धीरे अपना प्रभाव बढ़ाता हुआ उस अधर्म की जड़ों को काट देता है।

**अधर्मैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाज्जयति, समूलस्तु विनश्यति॥**

(मनुस्मृति 4.174)

अर्थ - अधर्म कर्ता मनुष्य अधर्म से पहले बढ़ता है तदनन्तर भद्र (सुखों) को देखता है। तब शत्रुओं को भी जीत लेता है। (किन्तु अंत में) मूल सहित नष्ट हो जाता है।

**श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रूत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्॥**

अर्थ - धर्म के सार को सुनिये और सुनकर उसे धारण कीजिए। जो व्यवहार व्यक्ति अपने लिए नहीं चाहता वैसा दूसरों के साथ भी न करे।

**धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्वारण - संयुक्तं, स धर्म इति निश्चयः॥**

(महाभारत कर्ण पर्व 69.56.58)

अर्थ - धारण करने का गुण होने के कारण ही धर्म को धर्म कहते हैं। 'धर्म' प्रजाओं का धारण करता है-उन्हें जीवित

रखता है। अतः जो कर्म जीवन धारण से युक्त हो वही धर्म है, ऐसा निश्चय जानों।

सत्य

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

(मनुस्मृति 4.138)

अर्थ - मनुष्य सत्य बोले और प्रिय बोले। ऐसा सत्य न बोले जो अप्रिय हो और ऐसा प्रिय वचन न बोले जो असत्य हो। यही सदा से चला आ रहा धर्म है।

आचार

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं, व्याधितो ल्पायुरेव च॥।

(मनुस्मृति 4.157)

अर्थ - दुराचारी मनुष्य संसार में निन्दा को प्राप्त करता है। निरन्तर दुःख भोगता है; रोगी रहता है और अल्प आयु वाला होता है।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्, वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो विततः क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हतः॥।

(महाभारत उद्योग पर्व 36.30)

अर्थ - सदाचार की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करें, धन तो आता - जाता रहता है। जो धन से हीन है वह वास्तव में हीन नहीं है, किन्तु जो सदाचार से हीन है उसे सर्वथा ही नष्ट - भ्रष्ट समझना चाहिए।

आर्य (श्रेष्ठ पुरुष) का लक्षण

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं, न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतो स्मीति करोत्यकार्यं, तमार्यशीलं परमाहुरार्यः॥।

(महाभारत उद्योग पर्व 33.117)

अर्थ - जो शान्त हुए वैर को पुनः नहीं भड़काता है, जो अभिमान नहीं करता है, जो अपने अस्तित्व को मिटने नहीं देता, जो विपत्ति में भी जो अधर्म का सहारा नहीं लेता। उसे ही लोग आर्य=चरित्र वाला कहते हैं।

न स्वे सुरवे वै कुरुते प्रहर्षं, नान्यस्य दुःखे भवति प्रहष्टः।
दत्त्वान पश्चात् कुरुते - अनुतापं स कथ्यते सत्पुरुष - आर्यशीलः॥।

(महाभारत उद्योग पर्व - 33.118)

जो अपने सुख में बहुत प्रसन्न नहीं होता और दूसरों के दुःख में खुशियां नहीं मनाता, दान देकर जो पश्चाताप नहीं करता, वही सत्पुरुष आर्य चरित्र वाला है।

कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे, स वा आर्य इति स्मृतः॥।

जो करने योग्य उत्तम कार्यों को करता है न करने योग्य दुष्कर्मों को नहीं करता, उत्तम आचरण को नहीं छोड़ता, वही आर्य है।

आर्य शब्द का अर्थ है - श्रेष्ठ, उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव वाला व्यक्ति। समस्त वैदिक साहित्य एवं रामायण, महाभारत आदि इतिहास के ग्रन्थों में आर्य शब्द गुण वाचक है। जाति वाचक नहीं। राम को सीता आर्य पुत्र सम्बोधन करती है। महिला के लिए आर्य पुत्री या आर्ये! सम्बोधन प्रयुक्त होता था।

जिस अर्थ में आजकल श्रीमान् जी, या सर (Sir) आदि सम्मानजनक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उसी अर्थ में प्राचीन काल में आर्य शब्द का प्रयोग किया जाता था। अंग्रेजों ने षड्यन्त्र के कारण आर्य शब्द को जाति वाचक लिखा और भारत में फूट डालने के लिए दक्षिण भारतीयों को द्रविड़ कहना शुरू किया। वर्तमान इतिहास लेखक भी उस षड्यन्त्र को पुष्ट कर रहे हैं और कहते हैं कि भारत वर्ष में आर्य बाहर से आये, जबकि वेदों में आर्य शब्द किसी जाति, वर्ण या धर्म के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है।

ऋग्वेद के अनुसार :-

“अहम् भूमिमाददामि आर्याय”

(4.26.2)

अर्थात् - भगवान ने तो यह धरती आर्यों (श्रेष्ठ पुरुषों) के लिए ही दी है। इसलिए तो वैदिक संस्कृति बार - बार यह उद्घोष करती रही :-

“इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृणवन्तो विश्वमार्यम् ॥”

(ऋग्वेद 9.63.5)

अर्थात् - इन्द्र (देवत्व) को बढ़ाने के लिए राक्षसों का, दुष्टों का संहार करो तथा सारे विश्व को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाओ।

सन्ध्या, जप का फल

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्, दीर्घमायुरवाप्नुवन्।

प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च, ब्रह्मवर्चसमेव च ॥।

(मनुस्मृति 4.94)

अर्थ - ऋषियों ने लम्बे - लम्बे समय तक सन्ध्या करके

दीर्घ आयु, बुद्धि, यश, प्रसिद्धि और ब्रह्म तेज को प्राप्त किया था।

यज्ञः

नौर्ह वा एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम् ॥

(शतपथ ब्राह्मणम् 2.3.3.15)

अर्थ - यह जो अग्निहोत्र है, वह वस्तुतः स्वर्ग (अत्यन्त सुख) को प्राप्त कराने वाली नौका के समान है।

शिष्यः (विद्यार्थी)

काकचेष्टा बकध्यानी, श्वाननिद्रस्तथैव च।

अल्पहारी गृहत्यागी, विद्यार्थी पञ्चलक्षणम् ॥

अर्थ - कौए के समान चेष्टा वाला अर्थात् स्फूर्तिमान्, बगुले के समान ध्यान वाला, कुत्ते के समान निद्रा वाला, कम भोजन करने वाला और घर को छोड़कर गुरु के पास रहने वाला - इन पांच लक्षणों वाला विद्यार्थी होता है।

सुखवार्थिनः कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थिनः सुखम् ॥

सुखवार्थी वा त्यजेद् विद्यां, विद्यार्थी वा त्यजेद् सुखम् ॥

(महाभारत उद्योग पर्व 40.6)

अर्थ - सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ से प्राप्त हो सकती है और सच्चे अर्थों में विद्या के अभिलाषी को विद्या ग्रहण काल में सुख नहीं मिलता। सुख से रहने वाला अभ्यासी विद्या की कामना त्याग दे और विद्या का अभिलासी सुख को त्याग दे।

शिष्टाचार

तृणानि भूमिरुदकं, वाक्यतुर्थी च सुनृता।

एतानि तु सतां गेहे, नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥

(महाभारत उद्योग पर्व 36.34)

अर्थ - तृणनिर्मित आसन, स्थान, जल और चौथी प्रियवाणी ये चार वस्तुएं तो सज्जनों के घरों में कभी भी अनुपलब्ध नहीं होती। भाव यह है कि सज्जन अतिथि के आने पर उसका सत्कार दिल से करते हैं, चाहे उनके पास धन हो या न हों।

शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित्सह॥

(मनुस्मृति 4.139)

अर्थ - किसी के साथ निष्प्रयोजन व्यर्थ की शत्रुता न बांधे और वाद-विवाद भी न करें।

माता - पिता

यं मातापितरौ क्लेशं, सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या, कर्तुं वर्षशतैरपि॥

(मनुस्मृति 2.227)

अर्थ - सन्तानों को जन्म देने और उनके पालन करने में, माता-पिता जितना कष्ट सहन करते हैं उनका बदला सैंकड़े वर्षों में भी नहीं चुकाया जा सकता।

परिवार

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं, कल्याणं तत्र वै धुवम्॥

(मनुस्मृति 3.60)

अर्थ - जिस परिवार में पत्नी से पति सन्तुष्ट रहता है, वैसे ही पति से पत्नी सन्तुष्ट रहती है, उस परिवार में निश्चय ही कल्याण का वास होता है।

गृहस्थाश्रम

वने पि दोषाः प्रभवन्ति रागीणां, गृहे पि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते, निवृत्तरागस्य गृहं तपो वनम्॥
(हितोपदेश संधि)

अर्थ - वन में रहने पर भी आसक्ति वाले मनुष्य के जीवन में दोष उत्पन्न हो जाते हैं और गृहस्थ में रहते हुए भी यदि पांचों इन्द्रियां वश में हैं तो वह तपस्या है। जो निन्दा के अयोग्य (शुभ) कर्म में लगा रहता है। ऐसे आसक्ति रहित मनुष्य के लिए घर ही तपोवन है।

नारी

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्रा फलाः क्रियाः॥

(मनुस्मृति 3.56)

जहाँ स्त्रियां पूजी जाती हैं - इनका सत्कार किया जाता है वहाँ दिव्य गुण वाले आत्मा जन्म लेते हैं और जहाँ इनका सत्कार नहीं होता वहाँ सारे कर्म निष्फल हो जाते हैं।

स्त्रियां तु रोचमानायां, सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां, सर्वमेव न रोचते॥

(मनुस्मृति 3.62)

अर्थ - स्त्री (गृहिणी) के सुशोभित और प्रसन्न रहने पर सारा परिवार सुशोभित लगता है और उसके अशोभित तथा अप्रसन्न होने पर सारा परिवार अरुचिकर लगता है।

अतिथि:

अतिथिर्यस्य भग्नाशो, गृहात्प्रति निवर्त्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै, पुण्यमादाय गच्छति॥

(महाभारत शान्तिपर्व 191.12)

अर्थ - जिस गृहस्थ के घर से आया हुआ अतिथि बिना भोजनादि की आशा पूरी किये हुए खाली लौट आता है। वह अतिथि उस गृहस्थ को अपने दुष्कर्म देकर और उस गृहस्थ के सुकर्म लेकर जाता है।

लोभ त्यागः

लोभः प्रतिष्ठा पापस्य, प्रसूतिर्लोभ एव च।
द्वेषक्रोधादिजनको लोभः पापस्य कारणम्॥

(भोजप्रबन्ध 1)

अर्थ - लोभ में पाप रहता है, लोभ से ही पाप उत्पन्न होता है, लोभ ही द्वेष, क्रोध आदि का जनक है। इस प्रकार लोभ ही पाप का मूल कारण है।

मैत्री

दुर्जनेन सम सरव्यं, प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः, शीतः कृष्णायते करम्॥

(हितोपदेश मित्रलाभ 80)

अर्थ - दुष्ट मनुष्यों के साथ मैत्री अथवा प्रीति न करें। अङ्गारा गर्म हो तो जलाता है और ठण्डा होने पर हाथ को काला करता है।

प्राणायामः

दह्यन्ते ध्मायमानानां, धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते, दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

(मनुस्मृति 6.71)

अर्थ - जैसे अग्नि में तपाने से स्वर्ण आदि धातुओं के दोष नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा प्राणों को वश में करने से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं।

सन्तोष

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मव, भूयः एवाभिर्वर्द्धते॥

(महाभारत आ.75.50)

अर्थ - कामना कभी भी कामनाओं के उपभोग से शान्त नहीं होती है अपितु बढ़ती ही है। जैसे - घृत आदि हवि के द्वारा अग्नि शान्त नहीं होता, अपितु और अधिक बढ़ता ही है।

सभा

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति, सत्यं न तद् यच्छलमभ्युपैति॥

(महाभारत उद्योगपर्व 35.48)

अर्थ - वह सभा सभा नहीं, जहाँ वृद्ध न हो, वे वृद्ध वृद्ध नहीं जो धर्म की बात नहीं करते, वह धर्म धर्म नहीं है जिसमें सत्य न हो और वह सत्य सत्य नहीं जो छल का सहारा ले।

धर्मो विद्वस्त्वधर्मेण, सभां यत्रोपतिष्ठते।

शल्यं चास्य न कृन्तन्ति, विद्वास्तत्र सभासदः॥

(मनुस्मृति 8.12)

अर्थ - जिस सभा में धर्म अधर्म के द्वारा बींधा जाता है, दबाया जाता है और वहाँ बैठे सभासद उस अधर्म रूपी काँटे को नहीं निकालते तो वे सभासद उस अधर्म से पीड़ित होते हैं।

उद्यम और भाग्य

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात् पुरुषकारेण यत्नः कुर्याद् अतन्दितः॥

(हितोपदेश प्रस्तावना)

अर्थ - पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म ही भाग्य कहलाता है।
 अतः मनुष्य को प्रमाद छोड़कर सदा पुरुषार्थ करना चाहिए।
 आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
 नास्तु द्यमसमो बन्धुर्युं कृत्वा नावसीदति॥

(नीतिशतक 87)

अर्थ - शरीर में रहने वाला आलस्य, मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। उद्यम (पुरुषार्थ) के सदृश कोई बन्धु नहीं है, जिसे करके मनुष्य कभी दुर्खी नहीं होता।

अभिवादनम्

अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः।
 चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।

(मनुस्मृति 2.122)

अर्थ - प्रणाम करने के स्वभाव वाले और सदा वृद्धों की सेवा करने वाले की आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार वस्तुएं बढ़ती हैं।

आश्चर्यम्

अहन्यहनि भूतानि, गच्छन्तीह यमालयम्।
 शेषाः स्थावरमिच्छन्ति, किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महाभारत वनपर्व 313.116)

अर्थ - इस संसार में प्राणी दिन - प्रतिदिन मृत्यु को प्राप्त होते हैं, किन्तु जो जीवित हैं वे अभी भी स्थायी रूप से जीने की लालसा पाले हुए हैं, इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा?

प्रसन्न व्यक्ति

पञ्चमे हनि षष्ठे वा, शाकं पचति स्वे गृहे।
 अनृणी चा प्रवासी च, स वारिचर मोदते।

(महाभारत वनपर्व 313.115)

अर्थ - भले ही मनुष्य घर में पांचवें या छठे दिन अच्छा शाकादि पकाता हो (अन्यथा चटनी से ही रोटी खाता हो),

किन्तु यदि वह पितृऋण आदि ऋणों से और किसी के कर्ज से रहित है। व्यर्थ ही उसे परदेश में नहीं रहना पड़ता तो वही मनुष्य प्रसन्न है।

अभिमान

जरा रूपं हरति धैर्यमाशा, मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
 कामो हियं वृत्तमानार्थं सेवा, क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः॥

अर्थ - बुद्धापा सौन्दर्य को हर लेता है, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, कामुकता लज्जा को, दुष्टों की सेवा सदाचार को, क्रोध सम्पत्ति को और अभिमान सर्वस्व हर लेता है।

विवेक

काव्य शास्त्रं विनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्।
 व्यसनेन च मूर्काणां, निद्रा कलहेन वा॥ (हि.मि.)

अर्थ - बुद्धिमानों का समय उत्तम काव्यों तथा शास्त्रों के चिन्तन में व्यतीत होता है, किन्तु मूर्खों का समय बुरी-बुरी आदतों में, सोने अथवा लड़ाई - झगड़े में बीतता है।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
 वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

(किरातार्जुनीयम् 2.30)

अर्थ - मनुष्य अक्समात् ही किसी कार्य को न कर बैठे, बिना विचार किये कोई कार्य करना आपत्तियों का मुख्य कारण है। विचार कर कार्य करने वाले मनुष्य का तो गुणों से प्रेम करने वाली सम्पदाएं स्वयं वरण कर लेती हैं।

“मानव बन”

1. बोल सको तो मीठा बोलो, कटु बोलना मत सीखो।
लगा सको तो बाग लगाओ, आग लगाना मत सीखो॥
बोल सको तो मीठा बोलो.....
2. जला सको तो दीप जलाओ, दिल का जलाना मत सीखो।
मिटा सको तो अहं मिटाओ, प्रेम मिटाना मत सीखो॥
बोल सको तो मीठा बोलो.....
3. बिछा सको तो फूल बिछाओ, शूल बिछाना मत सीखो।
बता सको तो सुपथ बताओ, पथ भटकाना मत सीखो॥
बोल सको तो मीठा बोलो.....
4. भला किसी का कर न सको, तो बुरा किसी का मत करना।
हो अमृत नहीं पिलाने को, तो जहर पिलाना मत सीखो॥
बोल सको तो मीठा बोलो.....
5. कभी मधुर न बोल सको, तो कटु वचन भी मत कहना।
मरहम पट्टी कर न सको, तो धाव लगाना मत सीखो॥
बोल सको तो मीठा बोलो.....
6. देव यदि तुम बन न सको, तो कम से कम इन्सान बनो।
दीपक बनकर जल न सको तो, दीप बुझाना मत सीखो॥
बोल सको तो मीठा बोलो.....
7. फूल नहीं बन सकते हो तो, काँटे बनकर मत चुभना।
पुण्य नहीं कर सकते हो तो, पाप भी करना मत सीखो॥
बोल सको तो मीठा बोलो.....
8. “मनुर्भव” उपदेश वेद का, पालन कर तुम आर्य बनो।
पर सेवा व्रत ले न सको तो, बाधक बनना मत सीखो॥
बोल सको तो मीठा बोलो.....

॥ ओ३म् ॥

अमर-वाणी “स्वाध्याय”

1. मस्तिष्क के लिए वैदिक साहित्य के अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी शरीर के लिए भोजन की एवं व्यायाम की।
2. प्रकृति की अपेक्षा अध्ययन के द्वारा अधिक व्यक्ति महान् बने हैं।
3. आज पढ़ना सब जानते हैं, पर क्या पढ़ना चाहिये, यह सब नहीं जानते।
4. अच्छी पुस्तकों को पढ़ना सबसे कम खर्चीला मनोरंजन एवं आत्म बल देने वाला है।
5. जो आदमी यह समझता है, कि हर बात उसके तुरन्त समझ में आ जाती है, वह कुछ भी नहीं सीख सकता।
6. ऐसी पुस्तकों का प्रतिदिन अवश्य अध्ययन करो, जो आपको गुमराह करने के बजाय आत्मिक, शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति में सहायक हो।
7. पालने से लेकर श्मशान तक ज्ञान प्राप्त करते रहना अनिवार्य समझो।
8. जो पुस्तकें हमें सबसे अधिक सोचने के लिए विवश करती हैं, तुम्हारी सबसे बड़ी सहायक हैं।
9. अध्ययन हमें आनन्द प्रदान करता है, ईश्वरीय प्रेम एवं योग्यता प्रदान करता है।
10. जिसे पुस्तकें पढ़ने का शौक है, वह सब जगह सुखी रह सकता है।

11. अशिक्षित रहने से तो पैदा न होना अच्छा है, क्योंकि अज्ञान सब बुराइयों की जड़ है।
12. चरित्रहीन का उच्च कुल में जन्म लेना भी व्यर्थ है, चरित्रवान् एवं विद्वान् चाहे किसी कुल में जन्म ले ले, वह पूज्य है।
13. वैदिक धर्म का आधार चार वेद हैं:-
 - (1) ऋग्वेद (2) यजुर्वेद (3) सामवेद (4) अथर्ववेद

इनके अतिरिक्त वेदों की व्याख्या के ऋषिकृत ग्रन्थ उपवेद, उपनिषद्, दर्शन, वेदांग भी वैदिक धर्म का परिज्ञान कराते हैं।
14. “वेदोऽस्मिलो धर्म मूलम्” अर्थात् वेद ज्ञान सब धर्मों का मूल है।

ईश्वर से प्रार्थना एवं आग्रह (एक भक्त द्वारा)

1. मुकुट धर, माल धर, गिरधर मुरारी, तेरे दरबार में आया भिरवारी॥
लगा के कान सुन विपदा हमारी, यही है आरजू बांके बिहारी॥
करो कृपा श्री कृष्ण अब सवेरी, लगाई क्यों मेरे कारज में देरी।
2. जगत में बहुत हैं पापी अधर्मी, मगर मुझसा नहीं कोई कुकर्मी।
बहुत मैंने सही सख्ती व नर्मी, दया कर मुझपे अब तो कर न गर्मी॥
3. जगत में आकर कुछ भी न देखा, जिसे देखा उसे मोहताज देखा।
सभी रखते हैं तुझसे अपना लेखा, ताल्लुक तेरे ही अपना परेखा॥
4. जगत में जो अजीजो अकरबा हैं, हर एक वो तेरी किरण बिन खफा हैं।
तेरे दरबार में यह इल्लजा है, दया कर मुझपे अब मौका दया है॥
5. चतुर बन कर मैं धोखा खा चुका हूं। किये की अब सज़ा मैं पा चुका हूं।

6. पकड़ ले हाथ गहरे जा चुका हूं। तुम्हें जामिन मैं अपना पा चुका हूं।
7. जो लिखना था उसे मैं लिख चुका हूं।
अरज मैं अपनी तुमसे कर चुका हूं।
शरण तेरी प्रभु मैं आ चुका हूं।
8. करो कृपा श्री कृष्ण अब सवेरी, लगाई क्यों मेरे कारज में देरी।
9. जनक ने प्रण किया था इस हशर से। गोया विधना ने लिखा इस नजर से।
उठा लेवे धनुष जो कोई कर से। ब्याहूं जानकी को उस बशर से ॥
10. शहनसाहबाने आलम बातजम्मुल, कमां को तोड़ने आये जुज़ोकुल।
लगाये जोर बेहद और किये गुल, मगर जुबिश कमाने की न बिल्कुल।।
शहनशाहों का जब यह हाल देखा, कमाने की तोड़ी तुम्हीं ने बेमहाबा॥।
किया खुश सब को और सीता को ब्याहा, खुशी से अहद सब शहका निबाहा॥।
11. तुम्हीं ने भीलनी के खाये थे बेरा। ज़रा अपने न लाये दिल में कुछ फेरा।
प्रायश्चित उसके कटने में न की देर। मेरी अब क्यों नहीं सुनते हो तुम टेरा।
12. तुम्हें पकवान दुर्योधन न भाया, बिदुर घर साग रुखा तुमने खाया।
तेरी भगवान अपरमपार माया, सभी के ध्यान से बाहर है माया॥
13. अजी गिरधर मेरी सुनते नहीं टेर, लगायी तुमने कारज में बड़ी देर॥
लिया हे मुफलसी ने हर तरफ घेर, नहूसत के मेरे दिन हैं इन्हें फेर॥
14. अजी गिरधर मेरी सुनते नहीं हो, रव्याले मुफलसी करते नहीं हो।
जबां से कुछ भी अब कहते नहीं हो, हमारी नाथ सुध लेते नहीं हो॥
15. हमेशा सब की रक्षा कर रहे हो, हमारी बार को क्या थक रहे हो।
हमारी बार को क्या सो रहे हो, रुई सी कान में क्या दे रहे हो॥

16. किसी को जोर है सीमो जरी का, किसी को जोर है जादूगरी का।
किसी को जोर है ज्योतिषगरी का, मुझे है जोर बस कृपा हरि का॥
17. अयोध्या में कहाये कौशलाधीश, उड़ाये बाण से रावण के दस शीश।
विभीषण को करी लंका थी बरवशीश, नवाता हूं तेरे चरणों में अब
शीश॥
18. सभी को तेरी किरणा ने किया लीन, अधम रैदास को किया तुमने भगतकीन।
यह क्या इंसाफ है और कौन आईन, मुझे जो हर तरह लाचार कर दीन॥
19. अधम हूं और मेरे घट में खोटाई, करो हो किस तरह ओहदा बराई।
अठारह पूरान में तेरी बड़ाई, दया कर हे तुझे यशुमत दुहाई॥
20. कोई हरिनाम लेने में मगन है, कोई साधू की सेवा में मगन है।
कोई खैरात देने में मगन है, मेरे हृदय में हर दम यह सखुन है॥
करो कृपा श्री कृष्ण अब सवेरी, लगाई क्यों मेरे कारज में देरी।
मुकुट धर, माल धर, गिरधर मुरारी, तेरे दरबार में आया भिखारी॥
लगा के कान सुन विपदा हमारी, यही है आरजू बांके बिहारी॥
21. कबीरा पर करी कृपा तुम्हीं ने, गौतम नारि को तारा तुम्हीं ने।
धन्ना से भगत को जाना तुम्हीं ने, जमाया खेत बिन बोया तुम्हीं ने॥
22. सुदामा जब गये चरणों में तेरे, कहा अहवाल जा कानों में तेरे।
अगरचे दुख थे उनको धनेरे, मगर छिन में कटे कृपा से तेरे॥
23. कोई कहता है बेहतर है यह तदबीर, कोई कहता मुकद्दम है यह तकदीर।
मेरी हर वक्त तुम से ये ही त्करीर, रफा हो जाये जिससे सारी तकसीर॥
24. करी लंका की जब तुमने तैयारी, सिया लाने की जब मन में विचारी।
हुई लंका की तब पलभर में रवारी, घर आये जीत लंका से दुलारी॥
25. तुम्हारे यश को तुलसीदास ने गाया, भक्तवर सूर ने तुमको रिञ्जाया।
किसी ने कुछ कहा कह कर सुनाया, अधम हूं पर मैं तेरी शरण आया॥

26. दिया मीरा को विषराजा समझ और, रहे बाकी न जिसे जीस्त (जीवन)
का तोर।
तुम्हारे नाम का रखती थी नित गोर, हुआ अमृत जहर मीरा का
फ़िलफ़ोर (तुरन्त)॥
27. कसाई जात सदना था मुसलमान, जभी लाया तुम्हारी तरफ ईमान।
तुम्हीं ने उसको तारा भक्तजन जान, न लाये अपने दिल में कुछ भी अरमान॥
28. सभी करतूत स्वामी तेरे कर में, बचाया भारवी अंडा समर में।
बहूत सी खाक छानी दरबदर में, मुझे अब कल नहीं बाहर व घर में॥
29. करो कृपा श्री कृष्ण अब सवेरी, लगायी क्यों मेरे कारज में देरी।
फिक्र की फाँस में यह जां फँसी है, मगर मूरत तेरी हृदय बसी है।
दया कर वरना अब मेरी हंसी है, हंसी मेरी नहीं तेरी हंसी है॥
30. ज़बिश लाचार हूं और हूं परेशान, महज़ जाता रहा है मेरा ईमान।
न बेबूदी का कुछ मेरे है सामान, जस्तरत है तेरी कृपा की भगवान॥
31. शबाना रोज़ रोज़ी का फिक्र है, के बेकारी में अब मूजिब ख़तर है।
32. फ़क्त अफसोस बाकी बर जिगर है, इसी से आरजू शामो सहर है॥

॥ ओऽम् ॥

ऋषि दयानन्द के काम सारे
 जो अधूरे पड़े अब हमारे।
 वेद घर-घर में गुजित करें हम
 ओम ध्वज जग में पूजित करें हम।
 ऋषि का अहसान सम्मुख खड़ा है
 उनका अरमान उजड़ा पड़ा है।
 बेड़ा फिर से लगाओ किनारे
 ऋषि दयानन्द के काम सारे.....
 अब छुआ-छूत दफनायेंगे हम
 नकली भगवान छलिये करें कम।
 मर्द आर्यों से ज्यादा नहीं हैं
 संगठन आर्य का ही सही है।
 कब दयानन्द के ऋण उतारें
 ऋषि दयानन्द के काम सारे.....

नींद हमको अरे आ गई क्यों
 सुस्ती प्रसरण में अब छा गई क्यों।
 सारे हनुमान क्यों थक रहे हैं
 छल कपट गेरों के पक रहे हैं।
 हमसे दुश्मन हमेशा ही हरे
 ऋषि दयानन्द के काम सारे.....

पुनीत के उपनयन संस्कार पर आशीर्वाद (अमेरिका में)

दोहा - उपनयन सूत्र धारण करो, परम पुनीत कुमार
 रोशन तेरी शान से हो मंगल परिवार।

सवैया - दीदी के नित्य छुओ पग प्रातः, आशीर्वाद मिले सुखकारी
 अनुजा को भी लाड़ करो वह लाड़ली है, है गुड़िया सबसे अति प्यारी।
 माता-पिता के चरणों में छुको, जो तुम्हारे लिये सहते दुःख भारी
 सेवा करो इतनी उनकी कि, वे याद करें दिन-रात तुम्हारी।

भजन

उपनयन सूत्र तन पे सजा लो,
 मात, पितु, गुरु के ऋण को चुका लो।
 प्रकृति जीवात्म सदेश देती, ईश में मित्रता वरण लेती।
 यम, नियम, आसन सिखाती, प्राण, आयाम, अमृत पिलाती।
 धारणा ध्यान प्रभु का जुटालो, उपनयन सूत्र तन पे सजा लो।
 वेद सागर में डुबकी लगेगी, ज्ञान गागर अमृत से भरेगी।
 ब्रह्म सदेश मन में उतारो, ईश भक्ती का मारग सुधारो।
 मात, पितु, गुरु, कृपा सिर चढ़ालो, उपनयन सूत्र तन पे सजा लो,
 उपनयन, ब्रह्म का ज्ञान देगा, दूर अज्ञान सारा करेगा।
 आर्य में ज्ञान पूरित करेगा, मन के कलुषित अशुभ दुःख हरेगा।
 आर्य संस्कृति दिवाकर हमारी, ऋषि दयानन्द के हम पुजारी।
 आर्य का वंश ऊंचा उठा लो, उपनयन सूत्र तन पे सजा लो,

श्लोक

नास्ति मात्रा समं शक्तिः, नास्ति मात्रा समं गतिः
 नास्ति मात्रा समं त्राणं, नास्ति मात्रा समं प्रपा

प्रत्येक पंक्ति के लिए कृपया कुछ पंक्तियां संलग्न हैं।

देव पूजा है जीवित माँ की सेवा - भक्ति
माँ के चरणों में हो केन्द्रित समस्त अनुरक्षित।
मानव मात्र के पास माँ से ऊँची नहीं कोई उकित
प्राण दाता, पालक, पोषक अन्य नहीं कोई युक्ति।
माँ की महानता को छू नहीं सकती मोक्ष और मुक्ति।

नास्ति मात्रा समं शक्तिः।
त्यागी तपस्वी साकार सतीः
जननी जैसा नहीं कोई योगी यती
गीले में सोती और सूखे में सुलाती माँ
आप भूखी हो या प्यासी हमको तो खिलाती माँ
नहलाती, धुलाती, गन्दगी साफ करती,
रात - दिन लाड़ कर गोद में झुलाती माँ।
सौ वर्ष तक भी माँ का ऋण चुकावें।
तो भी उरण नहीं हो सकती कोई हस्ती।

नास्ति मात्रा समं गतिः
युग - युग से ज्ञान दर्शन करा रही तुम भेरी प्राण
लेखनी और आत्मा से अधिक नहीं प्रभाण
संसार की कोई नाप नहीं जो माँ का बता सके परिमाण
आपकी अनुकम्भा से जगत में संभव है नृणाम

नास्ति मात्रा समं त्राणं
हजारों है पानी की प्याऊ संसार भर में सब वृथा
सारी अस्थाई टूटने और सूखने वाली परम् तपा
कुसमय, कुठोर पर्याप्त जल की भयंकर व्यथा
पृथ्वी, गगन, सागर, पर्वत, वन छान मारो
हर जगह प्रतिफल निःशुल्क और सद्यउत्पन्न
उपलब्ध होगी नहीं कहीं ममता और दूध भरी
माता की जैसी दो - दो प्रपाः

नास्ति मात्रा समं प्रपा

कविता

कलम आज उनकी जय बोल
चढ़ गये जो पुण्य वेदी पर बिना लिये गर्दन का मोल।
नेताओं को मत अपनाना, उनका कोई नहीं ठिकाना
चुनाव घोटाले ठुकराना, भूरक्षा में प्राण लुटाना।
देश प्रेम की चादर ओढ़के मातृ भूमि को शीश झुकाना
कोल्हू में पचते सावरकर के कंधों के जो हम जोल।

कलम आज उनकी जय बोल
महान् भारत के फूलों पर गढ़ी हुई हैं आँखें जिनकी
निकाल कर बाहर कर दे, जहरीली बीनाई है उनकी
तेरा है यह देश दूसरों की नीयत है, घटियापन की
तीन नहीं तैतीस कारतूसों से भरदे मदन धींगड़ा का पिस्तोल।

कलम आज उनकी जय बोल
कई बार पिट चुके यार करगिल की चोटें से रहे हैं
तरस रहे हैं देख - देखकर केसर क्यारी बहक रहे हैं।
भरत भूमि का भीष्म चरण यदि अपने रथ पर चढ जायेगा
दुनिया के नक्शे से उसका नाम चित्र भी उड़ जायेगा।
तैरंगा (तिरंगा) रावलपिण्डी पर जो लहरादें बजा के ढोल

कलम आज उनकी जय बोल

“मेरी जब्मधरा राजस्थान के सम्मान में एचना”

(भाषा राजस्थानी + हाड़ती)

दिनांक : 01.11.2003

रचनाकार “मंगल”

थारा काँई गुण गान, म्हारा प्यारा राजस्थान
ऊँची ऊँची मगर्याँ चमके, ज्यूँ मोत्याँरा ढेर
गढ़ चितौड़ अनोखो जग में, प्यारो जैसलमेर
कवियित्री मीरां का मृदुगान, म्हारा प्यारा राजस्थान

मुगलाँ का छक्का छुड़वाया, बांको रणथम्भोर
बीजासन ओर पारवती, खीच्यां को किलो गूगोर
म्हाँकी यांही गढ़ा सूं शान, म्हारा प्यारा राजस्थान

पन्ना थारो त्याग अरी इतिहास न लागे लेर
चूड़ावत रानी अम्मर जस गावे छे आमेर
भारत में वीरां की खान, म्हारा प्यारा राजस्थान

राणा की ललकार सुणी, दिल्ली कांपी चहुं और
भामाशाह खजानो अर्प्यो, जींको ओर न छोर
हल्दीघाटी पे अभिमान, म्हारा प्यारा राजस्थान

घूँमर, कजरी, माँड, रसीली, गीताँ की प्यारी तान
बाकड़ली मूँछ्या का गायक, गावे झोंकें जान
राजस्थानी री पहचान, म्हारा प्यारा राजस्थान

॥ ओऽम् ॥

आर्य कौन :-

1. शीश जगदीश के जो सम्मुख छुकाता
जिसे माता के समान गऊ माता, वह आर्य है।

माता बहनों का अपमान है, असह्य जिसे
प्राण दे के प्राण जो बचाता, वह आर्य है।
देह चुनवाता है दीवार में स्वर्धर्म हेतु
पर, परर्धर्म में न आता, वह आर्य है।
खण्ड खण्ड भारत, विलोकि अति आरत जो
भारत अखण्ड जिसे भाता, वह आर्य है।

हम परमात्मा की देन है सनातन यों
बोध जिसमे है नहीं भ्रान्ति की भंवर है
अनय विरुद्ध क्रुद्ध काल से भी लड़ने को
युद्ध में समोद कसे रहता कमर है
हाथ जोड़ता है नहीं, मुख मोड़ता है नहीं
प्राण छोड़ता है, नहीं, छोड़ता समर है
बदल शरीर देता, चीर के सदस्य वीर
आर्य मरता ही नहीं, आर्य तो अमर है।

- 1) आर्य वह जो कि लघु भाई के भलाई हेतु
राज तज वन में समोद चला जाता है
आर्य वह जो कि प्राप्त राज्य को भी त्याज्य मान
भाई की ही पादुका को मस्तक चढ़ाता है।
2. आर्य जो भावरी दे कांवरी बिठा के तात मात को भी
साधा भर कांधा से उठाता है।
आर्य वह जो पिता के सकल सुखों के लिए
संयम की आग में जवानी को जलाता है।

3. आर्य का अनोखा त्याग, प्राणियों के संकट में,
प्राण दे के प्राण गऊ माता के बचाता है।
आर्य मुसकाता मुग्धा उर्वशी को माता कह शाप सहलेता
किन्तु पाप न कमाता है।
4. आर्य है उदार इतना, कि विश्व प्राणियों को
वैश्वदेव द्वारा अन्न जल पहुंचाता है।
आर्य है दयालु इतना कि भयभीत देख घाती
शत्रुओं का भी संघाती बन जाता है।

ॐ ॐ

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय, नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय
नमोऽद्वैत तत्त्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय

अर्थ : हे सदा रहने वाले, जगत के कारण प्रभो! तुम्हे नमस्कार हो।
सर्वलोक के आश्रय, सुख स्वरूप चेतना स्वरूप! तुम्हे प्रणाम हो।

मुक्ति के दाता! तुम्हे हम नमस्कार करते हैं।
हे सर्वव्यापक परब्रह्म! तुम्हे हमारा बार-बार प्रणाम हो।

“मंगल ज्ञान संचय”

अनुक्रमणिका

| विषय | पृष्ठ सं. |
|------------------------------------|-----------|
| ईश्वर से प्रार्थना | ए |
| लेखक परिचय | बी |
| प्रस्तावना | सी |
| एक निवेदन डॉ. रमेश गुप्त द्वारा | डी |
| प्रथम भाग – श्रीराम | |
| वाल्मीकि के राम | 1 – 3 |
| कौशल्या के राम | 4 |
| कैक्यी के राम | 5 |
| उर्मिला संवाद | 6 |
| सीता राम संवाद | 7 |
| सीता की वीरता | 8 – 9 |
| भरत के राम | 10 |
| शबरी के राम | 11 |
| हनुमान रावण संवाद | 12 – 13 |
| तुलसी के राम | 13 – 14 |
| कैक्यी राम संवाद | 15 |
| दशरथ राम संवाद | 16 |
| भाग.02 – नाटक | |
| केवट संवाद | 20 |
| भरत मिलाप | 22 – 23 |
| भाग.04 – विविधा | |
| कुछ नैतिक शिक्षाएं | 65 |
| गायत्रि गौरव | 69 |
| मानव बन | 70 |
| महापुरुषों की दृष्टि में आर्य समाज | 73 – 74 |
| ईश्वर से प्रार्थना एवं आग्रह | 74 – 77 |
| पुनीत के एपनान संस्कार पर आशीर्वाद | 79 |
| राजस्थान के सम्मान में रचना | 82 |
| एक कविता हआर्य कौनह | 83 – 84 |
| उपनिषद् के बारे में (अंग्रेजी में) | I-V |
| संस्कार (अंग्रेजी में) | VII-XII |